जिज्ञासु के लिए संकेत

मैं मानता हूँ कि केवल प्रश्न और उत्तर आदमी के रहस्य-मय अन्तस् को उजागर नहीं करते। यह केवल सत्संग और अभ्यास द्वारा जाना जा सकता है। मैं आप से साफ़ साफ़ क़बूल करता हूँ कि मैंने किताबें नहीं पढ़ी हैं क्योंकि मैंने उन्हें कभी काम का नहीं समझा। मेरा लक्ष्य तो सत्य था, मैं केवल उसे ही पाने योग्य मानता था और किताबों का अध्ययन मैंने विद्वानों और पंडितों के लिए छोड़ दिया। मैं जो कुछ भी कहता या लिखता हूँ वह सब आत्मानुभूति के मार्ग में मेरे अनुभवों के आधार पर है, शंकर या रामानुज या औरों ने अपने अनुभवों के बारे में जो कुछ कहा हो उससे मुझे कोई मतलब नहीं। अब अवश्य मैं कभी कभी कुछ पढ़ लेता हूँ, पर वह केवल मन-बहलाव के लिए होता है और उसमें से मैं सरल अभिव्यक्ति के लिए अधिक से अधिक याद रखने की कोशिश करता हूँ। शंकराचार्य के "विवेक-चूड़ामणि" में पढ़ी हुई एक ऐसी बात मुझे याद है, जिसका अर्थ है:

"मोक्ष प्राप्ति में शास्त्र सहायक नहीं होते और जब मोक्ष मिल गया तो शास्त्र बेकार हैं।"

जब हम अभ्यास आरंभ कर देते हैं और अन्तिम ध्येय की खोज में लग जाते हैं, तो हम अपना ध्यान उन बातों पर केंद्रित

करते हैं जो हमें अपनी साधना में सहायक लगती हैं। तब हम सोचने लगते हैं कि हर चीज ईश्वर की मरजी पर निर्भर करती है, जिससे हम उससे जुड़े रह सकें। धीरे धीरे यह नजदीकी और अधिक लगाव में बदलती है जो सही अर्थ में लयावस्था का आरंभ है। उसके लिए हम प्रेम, भक्ति और अन्य उपयोगी साधनों का सहारा लेते हैं। हम साथ ही यह कह सकते हैं कि हमारी अपनी संकल्प-शक्ति हमारे सीमित दायरे में चलती है और ईश्वर की संकल्प-शक्ति उसके सारे असीम प्रदेश में। जब तक हम अपनी सीमाओं और बंधनों को छिन्न-भिन्न न कर दें तब तक हम यह दावा नहीं कर सकते कि हमारी इच्छा-शक्ति ईश्वरेच्छा से अभिन्न है। यही हमारी असली साधना है और हम इसे असलियत में विलीन होने के लिए करते हैं। एक और पुस्तक "अनन्त की ओर" में इस प्रसंग की व्याख्या की गयी है। उसमें मैंने समझाया है कि कैसे अपनी विशिष्टता से मुक्त होने के बाद मनुष्य ब्रह्म से अभिन्न हो सकता है। ईश्वर के और मनुष्य के संकल्पों के बीच का संबंध इस प्रकार समझाया जा सकता है कि जब हम प्रथम की ओर (यानी ईश्वर के संकल्प पर) नज़र करते हैं तो बड़ी चीज़ छोटी को अपनी ओर खींचने लगती है। अपने सारे प्रतिबंधों को छिन्न-भिन्न करके हम जब 'उससे' (परात्पर से) एक हो जाते हैं तो अद्वैत भाव में रहने लगते हैं। पर हम शुरू द्वैत अवस्था से

करते हैं और कदम बढ़ाते हुये अन्त में स्वतः अद्वैतावस्था में पहुँच जाते हैं।

जहाँ तक आपके सवाल : क्या सभी ईश्वर की ओर स्वतः या उसकी मरजी से बढ़ते हैं, की बात है, यह कहना काफी होगा कि सभी नदियाँ अपनी अलग पहचान एक दम मिटा कर समुद्र में मिल जाती हैं। समुद्र नदी से मिलने नहीं आता। ठीक उसी तरह हम उद्गम की ओर बढ़ते हैं। एक समय आयेगा जब सब "उसमें" लीन हो जायेंगे और वह महाप्रलय की बेला होगी। हम केवल अपना रास्ता छोटा करने के लिए और इस प्रकार तब तक के अनगिनत जन्मों की दुर्गतियों से बचने के लिए, अभ्यास करते हैं।

सृष्टि निर्माण के समय केन्द्र के चारों ओर घूमने वाली गति के प्रभाव द्वारा प्रकृति अस्तित्व में आई। गति से शक्ति उत्पन्न हुई जिसके कारण सृष्टि बनी। मुझे लगता है कि महाप्रलय के समय प्रकृति का अस्तित्व समाप्त हो जाता है, क्योंकि यदि कोई संरचित चीज बच जाती है तो महाप्रलय सच्चे अर्थ में घटित नहीं हुआ। उसके बाद जो बच रहता है वह केवल वही "एक" है। हम समझने के लिए उसे 'शून्य' या 'आधार' कह सकते हैं। बिना आधार के कोई प्रकृति और कोई विश्व कायम नहीं रह सकते। अस्तित्व के पीछे कोई सहारा चाहिए और वह सहारा ईश्वर या ब्रह्म है। अस्तित्व निरर्थक है यदि उसके

लिए कोई आधार न हो। जहाँ तक प्रारब्ध कर्म की बात है, मैं समझता हूँ और अपनी सूक्ष्म दृष्टि से देखता हूँ कि वे भोग के लिए संचित हैं क्योंकि शरीर और मन का हर काम कुछ प्रभाव पैदा करता है। जब हम अतीत के सारे संस्कारों से अपने को मुक्त कर लेते हैं, हमें मोक्ष की प्राप्ति हो जाती है। निःसन्देह यह उबाऊ काम है। राजयोग में अभ्यास और अच्छे मार्गनिर्देशन के कारण वे (संस्कार) भोग के लिए प्रायः भूनी हुई अवस्था में प्रकट होते हैं। भोग की प्रक्रिया नींद में भी चलती है बशर्ते कि अध्यात्म की लाजिमी चीज यानी गुरु इस काम की योग्यता रखता है और इन सब चीजों को भोग के लिए स्वप्नों में ले आता है। भक्तिपूर्ण अभ्यास द्वारा हमें केवल अपने को अनावृत करना पड़ता है। यदि आप जीवन के असली अमृत का स्वाद पाना चाहते हैं, तो भाग्य के उतार चढ़ाव की परवाह किये बिना अदम्य साहस के साथ मैदान में आगे आइये। हमारे जीवन के लिए, उस चीज की जरूरत है, खैरात या भीख की नहीं। सच्चा त्याग काम या पद का त्याग कर जंगल में चले जाना नहीं है, बल्कि अपने खुद का विसर्जन है। सच्चे जिज्ञासु में उसी की जरूरत है।

आपने मुझसे निर्विकल्प समाधि के बारे में पूछा। निःसन्देह यह एक योग-सम्बन्धी उपलब्धि है, पर इससे आपकी समस्या का समाधान नहीं होगा। वह आपको मोक्ष की अवस्था तक ला

सकती है पर मुक्ति (लिबरेशन) कुछ और ही चीज है, जैसा "सत्य का उदय" में समझाया गया है। जब आप ईश्वर के सदृश बहुत अधिक सूक्ष्म हो जाते हैं, केवल तभी आप मुक्ति के योग्य होते हैं। हम अपने अभ्यास में उसी के लिए कोशिश करते हैं।

मान लीजिये कि आपको निर्विकल्प समाधि हासिल हो जाती है। फिर भी कल्पना किसी न किसी रूप में बनी रहती है। इसके अतिरिक्त, निष्क्रियता की अर्जित अवस्था बराबर नहीं रह सकती, क्योंकि हमें अपने कर्तव्यों को पूरा करने में भी लगना पड़ता है। पर मान लीजिए कि हम उनकी फिक्र छोड़ भी दें, फिर भी शरीर-रक्षा (हमारे पुनीत कर्तव्यों में से एक) तो बच ही रहती है और वह पूर्णता की प्राप्ति के लिए भी अपरिहार्य है। यदि एक सी दशा बराबर बनी रहती है तो स्पष्टतः हमें उसका भान नहीं रह सकता। सच्ची समाधि की अवस्था वह है जिसमें हम शुद्ध असलियत से प्रति क्षण जुड़े रहते हैं, भले हम सारे समय सांसारिक कामों और कर्तव्यों में व्यस्त रहें। यह सहज समाधि नाम से जानी जाती है, जो उच्चतम उपलब्धियों में से एक है और निर्वाण का आधार ही है। शब्दों द्वारा उसके गुण नहीं बताये जा सकते पर जो उसमें स्थित रहता है वह उसका अनुभव कर सकता है। यह उतना सरल नहीं है जितना इसका नाम बताता है।

संत कबीर ने इसका बहुत बखान किया था और यह प्राप्त करने योग्य है।

मैं आपको एक चीज और बता दूँ। सही अभ्यास के लिए कुशल गुरु की खोज में लगिये। जब वैसे गुरु आपको मिल जाँय, तो उनके सम्मुख अपने को समर्पित कर दीजिए। मैं समझता हूँ कि जो आपकी जरूरत थी उसके बारे में मैं काफी कह चुका हूँ और अब आपके लिए सच्चे अभ्यासी की भूमिका निबाहना और ध्येय की प्राप्ति के लिए साधन अपनाना रह जाता है। तीन चिह्न बताते हैं कि हम ध्येय के निकट पहुँच रहे हैं। वे हैं ईश्वरीय काम, ईश्वरीय प्रज्ञा और ईश्वरीय विचार। अपने में इनको विकसित करने की कोशिश कीजिए। उसके लिए हमारे पास यौगिक प्राणाहुति पर आधारित एक सरल विधि है, जो अभ्यासी को मार्ग में बहुत मदद करती है। इसकी कारगुजारी का केवल तभी पता लगता है जब अभ्यासी कुछ दिन उसका अभ्यास करता है। हम आसान विधि अपनाते हैं क्योंकि हमें सीधी साधी चीज पानी है। यदि यह धारणा हृदय की गहराई में जम जाय, तो अवश्य ही फल जल्दी मिलेगा। अब क्या आपको मुझसे कुछ और पूछना है? मैं समझता हूँ कि एक बात रह गई है और वह है -पूर्णता कैसे प्राप्त करें? क्या यह बात नहीं है? मैं आपको एकदम साफ बता दूँ

कि यह जरा भी मुश्किल नहीं है बशर्ते कि आपको सुयोग्य मार्गदर्शक मिल जाय। अब ऐसे की ही खोज में लगिए। मेरी आपको यही दोस्ताना सलाह है। और जब वे आपको मिल जाँय, तो आप अपने को पूरी तरह उनके हवाले कर दीजिए। उनका साथ आपको बहुत कुछ जाहिर करेगा और वह उनको (पूरी तरह) समझने की एक विधि भी हो सकती है। मैंने आपका बहुत समय नष्ट किया है क्योंकि जवाब में एक वाक्य ही काफी था। वह यह है : अपने अन्दर खोजो और "उसे" खुद अपने में पाओगे। गुरु वहीं है। पर कब ? केवल तभी जब तुम वहाँ नहीं रहोगे।

समस्या : उसका समाधान

जब आत्मा ने शरीर रूपी वस्त्र धारण कर लिया, केवल तभी आवरण के रूप में उसका उलटा स्वरूप प्रकट हुआ। अर्थात् यह सब एक रस्सी की तरह का हो गया जिसने ऐसा स्वरूप बहुत सी गाँठों के पड़ने के बाद, ग्रहण किया। प्यारे भाई, हमने आदि काल में ही आत्मा के साथ उसके उलटे रूप को भी चेतनायुक्त कर दिया है। क्या आपने नहीं देखा है कि आग और पानी के मिलने से लपक दुगुनी हो जाती है और जब उसमें हवा भी मिल जाती है तो उससे चिनगारियाँ फूटने लगती हैं और लपक भी अनुरूप मात्रा में बढ़ जाती है ? यह

लपक क्या है ? यह प्रकृति की विभिन्न क्रियाएँ हैं जो आत्मा की शक्ति द्वारा घटित हुईं। अब ये चीजें यानी मिट्टी, पानी, आग, हवा के काम निगाह में आये। पर निगाह उसकी ओर, जो असलियत थी, नहीं गई। वह क्या था जिसने उनमें दुरुपयोग के कारण, ऐसी दशा पैदा कर दी जिसके कारण असलियत, जिसका कार्य परदे के पीछे था, निगाह में नहीं आयी ? न यही समझ में आ सका कि "उसे" ऐसे काम क्यों करने पड़े जिनका परिणाम विनाश था। उस काम का कारण यह था कि असलियत (सृष्टि-निर्माण के) उस संकल्प के सहित जीवात्मा के सृष्टि बनाने के संकल्प के साथ मिश्रित हो गयी। अब बहुलता (यानी सृष्टि के निर्माण) की धारणा एकता का उलटा है या एक तरह से दोनों चीजें एक दूसरे के विपरीत हैं। दूसरे शब्दों में, यह दूसरी चीज जो संकल्प के प्रभाव से बनी बताई जाती है, मूल वस्तु से अधिक स्थूल है। लेकिन यह दोनों चीजें इतनी गहरी मिली हुई आयीं कि उन्होंने मिल कर विचार को—सृष्टि-निर्माण के विचार को—त्वरित किया। और उसी तरह से उनका काम भी, आग और पानी के मिलने से जो होता है, उसके समान था।

हम आत्मा कुदरत से लाये जिसमें चेतना का भी कुछ अंश था और यह चेतना जीवात्मा के संकल्प का परिणाम था, जिसके कारण आकृतियाँ प्रकट हुईं। अब हमारे संकल्प का

परिणाम है कि हमने अपने साथ की चीजों को भी अपने विचार की शक्ति से चेतन कर दिया। उसके पहले क्या था ? वही जो आत्मा से भिन्न होता है आत्मा का गुण शान्ति है और शरीर, जो आत्मा से उलटा होता है, उसका गुण शान्ति का उलटा होता है। पर उसके निर्माता हम ही हैं और यह हमारी ही करनी है। अब जैसा ऊपर बताया गया है, यह लपक ही अशान्ति—कष्ट और पीड़ा—है। और हमारे कर्मों के फलस्वरूप बनती है। यदि उस चीज को शक्ति देने से रुक जाने की योग्यता हममें आ जाय, तो उसकी वही दशा होगी जो उन पौधों की होती है जिन्हें सींचा नहीं जाता। अब यह कैसे संभव है ? यदि हम अपने विचार को, जो अभी भौतिकता और शरीर की ओर मुड़ा हुआ है, आत्मा की ओर घुमा दें, तब वे चीजें जो हमारे कर्मों के फलस्वरूप कष्टों के रूप में बनती हैं, धीरे धीरे गायब हो जायेंगी और दृष्टि को आत्मा की ओर मोड़ने से जो प्रभाव उत्पन्न होता है, उसको भी प्रभावित करेगा। सफाई की क्रिया से धीरे धीरे उसकी दशा ऐसी हो जायेगी कि लपक गायब होने लगेगी। उसकी दशा वह होगी जो संकल्प और जीवन से प्राप्त चेतना को होश के साथ आत्मा की ओर घुमाने के कारण होती है।

सृष्टि अस्तित्व में आ गई। चेतना के अवतरण के तुरन्त बाद हम उस दुर्बल रोगी की तरह हो गये जिसे कुछ 'टानिक'

दिया जाता है। उसके परिणाम स्वरूप वह और बदपरहेजी करने लगता है और उस बदपरहेजी के कारण कष्ट झेलते हुए मृत्यु-शय्या पर पहुँच जाता है। टानिक दिये जाने में कोई गलती नहीं थी पर दोष था उसके गलत और अनुचित उपयोग में; और पीड़ा उस हद तक बढ़ गई कि दवा की जरूरत और तीव्रता से होने लगी। मैं फिर कहता हूँ कि यदि कोई बीमारी न रहती, तो शुरू में जो तन्दुरुस्ती थी उसकी किसी को याद न रहती। केवल रोगी ही तन्दुरुस्ती के मूल्य का आदर कर सकता है। इससे बरी होने पर ही तन्दुरुस्ती के चिह्न प्रकट होते हैं।

आप पूछेंगे कि कष्टमय मानी जाने वाली चीजें—या मूल तत्त्व की उलटी चीजें—कैसे शक्ति पाती हैं? उत्तर है कि चेतना-शक्ति का बल, उनको उस मात्रा में शक्तिवान बनाता है जिस मात्रा तक हम उन पर ध्यान देते हैं, और धीरे धीरे वे इतनी शक्तिवान हो जाती हैं कि वे हम पर या हमारे विचारों पर हावी हो जाती हैं। यही बात भक्ति में भी होती है। यदि हम अपना ध्यान मूल या ईश्वर की तरफ मोड़ लेते हैं, तो चूँकि ईश्वर स्वयं शक्ति है, भक्ति में भी शक्ति आने लगती है। तब दूसरी शक्ति यानी ईश्वर की शक्ति उतरने लगती है और अवांछनीय चीजें स्वतः कमजोर पड़ने लगती हैं। चूँकि ये चीजें हमारे अधीन हैं, हम उन्हें शक्ति प्रदान करते हैं। और चूँकि वह चीज

ईश्वर के अधीन है, उसे वहाँ से शक्ति प्राप्त होती है। आशय क्या है ? यदि हम सच्चे अर्थ में अपनी दिलचस्पी ईश्वर की ओर मोड़ लें, तब यह सारी चीजें अन्त में फीकी होकर मिट जाती हैं और धीरे धीरे परिणाम में वह दशा आती है जिसका वर्णन भगवान कृष्ण ने किया है। वह दशा क्या है ? मनुष्य अपने को क्रियाशून्य अनुभव करने लगता है और यह दशा जब बढ़ती है और उच्च स्तर पर पहुँच जाती है, तब संस्कारों का बनना रोक देती है। और यदि किसी ने इस दशा में प्रवेश पाया और आगे कदम बढ़ाये, तब क्या बचता है ? उसका एक भाग होगा जीवन-काल में ही मुक्ति जिसे जीवन-मोक्ष-गति कहा जाता है। यह कैसा शब्द है जिसे लोग अनेक तरह से प्रमाणित करना चाह रहे हैं। पर प्यारे भाई, कितनी हलकी और आसान चीज यह है। और विश्वास रखिये, इसे भी पाना बहुत आसान है। आसान चीज सदा बिलकुल अपने आप या आसानी से हासिल होती है।

वह चीज इतनी आसान है कि कोशिश करने पर वह ढेरों लोगों को आसानी से प्राप्त हो सकती है। इस दशा को प्राप्त करने की राह सामान्यतः उन लोगों ने बताई है जो वस्तुतः उस राह को जानते ही नहीं, न उन लोगों ने किसी ऐसे व्यक्ति के माध्यम से प्रयत्न किया है जो जीवन में इस तरह के क्षेत्र में प्रविष्ट हुए हों। वे इलाज ऐसे लोगों के पास खोजते हैं जो

बिलकुल नौसिखिये हैं और विषय पर सदा केवल बोलते भर रहते हैं। वे ऐसे लोगों से बहुत प्रभावित होते हैं जो मंच से बिना तैयारी के भाषण देते हैं। यों कहा जाय कि असली चीज तो प्रकृति पर अधिकार पाने वालों के निश्छल हृदय में में है। यह चीज लोगों को शायद ही मिलेगी। क्यों ? क्योंकि वे आसान चीज को आसान तरीके से पाने की कोशिश नहीं करते। ईश्वर करे वह दिन आये जब लोग, देवताओं के लिए भी दुर्लभ, सच्चे जीवन के अमृत को चखें। लोग सदा अपनी अपनी गाथा पर सोचने में लगे रहते हैं। कुछ देर के लिए एकान्त में बैठिये और ईश्वर का कम से कम उतने बलपूर्वक चिन्तन कीजिए जितना आप अपनी कठिनाइयों का करते हैं। तब क्या होगा ? अपने ईश्वर की अनुभूति उतनी ही सरल है जितना अनगढ़ रूप में सांसारिक चीजों को पाना।

तकलीफ—उसका प्रारंभ और अन्त

जो दुनिया में पैदा हुआ है उसके लिए तकलीफें झेलना लाजिमी है। वह उनसे बच नहीं सकता। इसी से तपस्या का जीवन अपना कर हम उनसे पीछा छुड़ाना चाहते हैं। ऋषियों ने तो अपने को पूरी तरह तपस्या में लगा दिया था। परम विशुद्ध ईश्वरीय विचारों में अपने को लगाने के अलावा इन तकलीफों से पार पाने की और कोई दवा नहीं है। जैसे नदी से निकली नहरें उसे कमजोर करती हैं, उसी तरह हमारे

खयाल मुख्य धारा को छितरा देते हैं। यदि बहुत सी नहरें नदी में से निकाल दी जाँय, तो नदी के बहाव में तेजी नहीं रहती। यही बात हमारे साथ है। हमारे विचारों में सदा जैसे पंख लगे रहते हैं और इसलिए उन्होंने मुख्य धारा को कमजोर बना दिया। पूजा के समय हम इन चीजों को अंदर खींचते हैं और एक धारा में संघटित करते हैं। विचारों में वही शक्ति आ जायेगी जिससे बहुत सी नहरें निकलती हैं। इसलिए जो प्रक्रिया हम अपनाते हैं वह यह है कि विपुल आकाश में हम अधिकाधिक गहरे पैठते जाते हैं। "उसकी" ओर जाने का बल चारों ओर छितराने वाले पानी को पवित्र विचारों की ताकत की तरफ खींचता है। परिणाम होता है कि छितरी हुई फालतू चीजें मुख्य और सर्वश्रेष्ठ धारा में आ मिलती हैं, जो हमारे मुख्य ध्येय और गन्तव्य सर्वशक्तिमान (ईश्वर) की ओर बहने लगती है।

लगाव से जो भी उपजता है वह तकलीफ है। दर्द और मजा दोनों तकलीफों की ओर योगदान देते हैं। महात्मा बुद्ध ने कहा था, "यदि आदमी पैदा न हुआ होता तो वह इन तकलीफ भरी अवस्थाओं से न गुजरता। जो दशा जन्म का कारण बनती है वह संकल्प की शक्ति है जो जन्म लेने की प्रवृत्ति में बदल जाती है। इस प्रवृत्ति का कारण दुनिया से हमारा लगाव 'या दुनिया की चीजों को कस कर पकड़ना है और यह लगाव चीजों, रूपों और शब्दों का मजा पाने की

हमारी प्यास या लालसा के कारण है। हमारी लालसा का कारण सुखद अनुभूतियों से मिला हुआ हमारा पहले का अनुभव है। पर इन्द्रियों का अनुभव इन्द्रियों के वस्तुओं से सम्पर्क के बिना नहीं हो सकता और यह सम्पर्क हो नहीं सकता था यदि पाँच ज्ञानेन्द्रियाँ और मन नहीं होते। ये छ अंग अपने अस्तित्व के लिए दैहिक मन-संस्थान पर निर्भर करते हैं जिससे मनुष्य का इन्द्रियगम्य अस्तित्व बनता है। यह संस्थान माँ के गर्भ में धीरे धीरे बढ़ नहीं सकता था यदि वह मृत या चेतनाशून्य होता। पर गर्भ के भ्रूण में जो चेतना उतरती है वह पिछले जन्मों के संस्कारों का प्रभाव भर है। वे संस्कार जिनसे हम पुनर्जन्म पाते हैं, अविद्या के कारण बनते हैं। यदि यह सच पूरी तरह समझ लिया जाय तो पुनर्जन्म होने वाला कोई कर्म हमारे हाथों होगा ही नहीं।"

मैं गौतम बुद्ध द्वारा निर्धारित इन विचारों से पूरी तरह सहमत हूँ। यदि हम अपनी शक्ति भर अपने मुख्य ध्येय की ओर चलते जाँय तो संसार का खयाल तो दूसरे दरजे का हो जायेगा। ध्यान-प्रक्रिया के परिपक्व होने तक अभ्यास करते रहिए। यह ध्यान की अन्तिम अवस्था है। जब हम असलियत से मिल कर एक हो जाते हैं तब उसके बाद आने वाली चीजें इतनी अंधेरी हो जाती हैं कि हमें उनका बोध नहीं होता। दूसरे शब्दों में, इस तरफ हम अंधे हो जाते हैं और असली

चीजों के लिए हमारी निगाह सुधर कर इस स्तर की हो जाती है कि हम पूरी तरह अपने को भुला बैठते हैं। जब यह दशा आती है तब हम अनुभव करते हैं कि हमें मुक्ति की अवस्था में हैं। यदि यह दशा पक्की हो जाती है तो सारे कष्टों का अन्त हो जाता है—पीड़ा, विषाद, भोग, सुख कुछ नहीं रहते। शरीर का यंत्र अब, हम पर कोई छाप छोड़े बगैर, काम करता रहता है। दूसरे शब्दों में, शरीर स्वचालित मशीन की तरह काम करता है, जो अपने आप जरूरत के माफिक चलती रहती है। अब सब चीजों का अन्त हो जाता है और नये संस्कार नहीं बनते। यह वह बिन्दु है जहाँ हम अपने आप पूरी तरह से अपने को समर्पित कर देते हैं। भगवद्गीता का यही सार (तत्त्व) है। यह वह दशा है जिसकी स्वर्गदूत भी कामना करते हैं। पर यह केवल मनुष्यों के लिए आरक्षित है। प्रिय मित्र, क्या आप इसके लिए लालायित नहीं हैं? मैं समझता हूँ कि हममें से हर किसी को इस लक्ष्य तक पहुँचने के लिए प्रयास करना चाहिए। यह चीज उतनी मुश्किल नहीं है जितनी लगती है, और मुझे तो इतनी आसान लगती है जितनी कोई भी चीज। पावन विचारों में तल्लीनता से इस ध्येय की प्राप्ति हो जाती है।

कम्पन, ध्वनि और प्रतीक

जो कुछ नीचे आया या उतरा, बढ़ कर फैल गया। जो कुछ दिखलाई पड़ा या महसूस हुआ उसकी दशा ऐसी हो गई जैसी

उस पानी से भरे बरतन को जिसमें से जब पानी छलकता है तो अधिकाधिक स्थान में फैलता जाता है। और तब इस तालाब को हाथ में लेने के लिए ऋषि लग गये और उनका ध्यान भी इधर था क्योंकि यह आदि काल था। उस समय तक उनमें कोई संस्कार नहीं पाये गये। चीज जिस तरह जाहिर हुई वैसी ही उनकी जानकारी में आई। बेशक यह तो हुआ कि किसी का ध्यान उस ठोस चीज की तरफ गया जिसका फैलाव बढ़ गया था और दूसरे की नजर उस पर पड़ी जो धार की तरह थी पर जिसमें छितराव कम था। वह ठोस चीज क्या हो सकती थी ? वे चीजें जो हर किसी की जरूरतों के लिए आवश्यक थीं। इसलिए वे उनमें गये और अधिक सूक्ष्म चीजों को अधिक सूक्ष्मदर्शी ऋषियों के लिए छोड़ दिया। निस्सन्देह आग, पानी और हवा की जरूरतें तो होती ही हैं। उन्हें समय समय पर अपनी गति के अनुसार काम करना पड़ता है। ऋषियों ने केवल इन्हीं चीजों को हाथ में लिया और उनकी अन्दरूनी हालत में ऐसा मोड़ पैदा किया कि जिस जगह पर मोटी धार का प्रभाव पड़ रहा था उसी जगह से उनमें हलचल पैदा की। इसलिए अग्नि, वायु, आदि को ठीक उसी जगह से प्रेरणा मिली जहाँ से वे जुड़े थे और जहाँ मोटी धार का वांछित प्रभाव था। मेरी नम्र. राय में वह नजर सबसे पहले उन तत्त्वों पर पड़ी जिनमें चैतन्य की शक्ति थी। इसलिए आप देखेंगे कि शुरू में केवल ऐसे मंत्र रचे गये जिनसे वे परिणाम

निकल सकते थे जो हमारे जीवन को कायम रखने के लिए और उसके निर्वाह के लिए आवश्यक थे। यह भी एक जरूरी चीज थी।

एक लम्बे अरसे के बाद तत्त्वों में व्यस्त रहने के उपरान्त, यह महसूस किया गया कि लगातार उसकी छान बीन करने में चिन्तन उसी पर रुका रह गया था। इसके आगे, उन्होंने उस मूल धारा पर, जिसे अध्यात्म कहा जायगा, फिर चिन्तन शुरू किया। इसका परिणाम हुए उपनिषद् और यह उनके सही चिन्तन का फल था। अब क्या आप इससे इस नतीजे पर न पहुँचेंगे कि इसमें विकास का रूप कायम रहा है और यह बौद्धिक प्रयास का इतिहास बन गया?

ऊपर की बात सिर्फ एक भूमिका और अनपढ़ का उद्गार है और उसके मानसिक चिन्तन का फल (उसके परिपक्व विचार की तलछट) है। अब मैं मुख्य मुद्दे पर आता हूँ।

वेद वास्तव में वह दशा है जो सृष्टि के निर्माण के पूर्व थी। ईश्वर आपको उस दशा का आह्लाद प्रदान करे। आपको भी वह मिलेगा। इसलिए यह बिलकुल सच है कि वेद सृष्टि-निर्माण-काल में अस्तित्व में आये। उन्हें पुस्तक का रूप दिया गया। यह ऐसा है जैसे हालत को वस्त्र पहना दिया गया हो। उस समय क्या मौजूद था? वही मथने वाली हालत और

परमाणुओं की रचना। जो चीज परमाणु बनी वह मन्थन क्रिया का परिणाम थी। दूसरे शब्दों में, यह उस चीज से जुड़ी है जो मन्थन का परिणाम है। अब नतीजा चाहे जो हो—और इसने कई शक्लें अख्तियार कीं—उनकी मानसिक स्थिति उनके मूल (स्रोत) में रही। और वह हालत जो भी रही हो, उसे निश्चित रूप से वैज्ञानिक कहना चाहिए क्योंकि यह कभी नहीं हुआ कि आक्सीजन और हाइड्रोजन के मिलने से पानी न बना हो। मैं सिर्फ उस चीज को वैज्ञानिक कहता हूँ जो हमेशा एक नतीजा दे, चाहे जो कोई उस पर प्रयोग करे। अब, नतीजा चाहे जो हो, जब निगाह इसकी मौलिकता पर गयी तो उससे इसकी उत्पत्ति का ज्ञान हो गया। अब वैदिक ऋषि इन धारों के मंथन से पैदा मद्धिम आवाज को आधार मान कर, "उसको" खोज में लगे रहे जिसकी यह आवाज थी। इसलिए ऋग्वेद के शुरू के कुछ हिस्सों के मंत्रों के जिन अंशों को पढ़े जाते हुये मैंने सुना है उनसे जाहिर होता है कि ऋग्वेद में इसी "शब्द" का उपयोग किया गया है। दूसरे शब्दों में, असल तत्त्व को पहचानने की यही कुंजी थी। अब जब उन्हें कुंजी मिल गई और असली चीज उद्घाटित होने लगी, तो उस सारी चीज ने एक और मोड़ ले लिया। आध्यात्मिक आशय के लिए एक नया अध्याय खुल गया और खयाल की उड़ान और तेज होने लगी। जब ऋषियों को शब्द के मार्फत असलियत की झलक मिल गई तो उन्होंने उसमें और गहरे डुबकी लगाने का इरादा किया। और जब उन्होंने उसमें

डुबकी लगाई और कड़ी का 'वह' हिस्सा उनकी पकड़ में आ गया, तो पहला पाठ जो उन्होंने सीखा वह "एकोऽहं बहुस्याम्" (एक के अनेक होने) की भावना थी। पर यह तो असलियत का दुनियाबीपन यानी नीचे दरजे का खयाल था। अब खयाल और ऊँचाई पर गया और उनके हाथ में कड़ी का ऊपर वाला हिस्सा आ गया। उन्हें इस बात का बोध हो गया कि यह धाराओं की गति से उत्पन्न प्रतिध्वनि है, और इसके परे भी कुछ है। खोज अब भी जारी रही और 'एकोऽहं बहुस्याम्' के इस खयाल के आगे गयी। और उस तरह का दुनियाबीपन अब त्याग दिया गया। दूसरे शब्दों में, उस असली चीज का स्थूल रूप जो शुरू में हमारी निगाह के सामने था, छिप गया और हमारी उछाल उसके आगे शुरू हुई। तब क्या हुआ? द्वैत का विचार भी, जिसमें यह शंका निहित थी कि इसकी सीमा क्या हो सकती है, बुदबुदाने लगा। उसने 'स्व' को तौला और इस पर गहराई से चिन्तन किया। गहराई से चिन्तन करने पर वे इस विचार पर पहुँचे कि केवल इन्सानी फितरत के कारण हम अपने को तौलते आ रहे हैं। जब यह पूरी तरह हमारी समझ में आ गया तब हमारा स्वभाव और खयाल उस असली चीज से जुड़ गये जो हममें जमी हुई है। यह ऐसा कुछ हुआ जैसे खयाल उस धारा में तैरने लगा। वे और आगे बढ़े और उन्हें यह संकेत मिला कि यह सब महज मक्खन था, जो मंथन का परिणाम है, पर असलियत नहीं था। अब कदम

और आगे बढ़े। यह बीच के हिस्से के पास की पहुँच है जिसका ऊपर वर्णन किया गया है। और अधिक उन्नति करने पर, परमानन्द की महक का अनुभव होने लगा। अब यह सवाल उठ सकता है कि कैसे अनुभव होने लगा जब विचार उसके साथ एकाकार हो गया था। इसका सिर्फ यही जवाब है कि जिन कणों को हमने अपने खयाल में पकड़ लिया था उन्हीं को ठोस अवस्था यह मक्खन है। परमानन्द की अवस्था आई भी, हम उसमें रहे भी, हमें उसका अनुभव भी हुआ और हम इस निष्कर्ष पर पहुँचे कि यह वही चीज है जिसकी हम तलाश कर रहे थ। कुछ लोग वहीं रुके रह गये और शेष लोग इस सच्चिदानन्द दशा के भी आगे गये। और बढ़ते चले जाने पर, ऐसी अवस्था ने उनको निगल लिया कि वे अद्वैतावस्था में जकड़ गये। सम्भवतः इसके आगे वेद मौन हैं क्योंकि उन्होंने उसे अनिर्वचनीय बताया है और 'नेति' 'नेति' (यह नहीं, यह नहीं) घोषित किया है।

अब विज्ञान का वही सवाल एक बार फिर उठता है। मैं समझता हूँ कि किसी हद तक मैंने जवाब दे दिया है। पर यदि आप और अधिक (स्पष्टीकरण) चाहते हैं तो हम कहेंगे कि हम उस रास्ते पर हैं और हमने अपने को ऐसा बना लिया है कि हम असलियत के मेल में हैं। तब यह निश्चित रूप से कहा जा सकता है कि सिर्फ असलियत हमारी नजरों के सामने है।

नहीं, हम खुद वैसे हो गये हैं। हम सच्चे ज्ञान का आवास हो गये हैं। नहीं, अब हम खुद ज्ञानरूप हो गये हैं। 'य' का यह कथन कि वे गणितीय प्रतीकों से ज्यादा सच्चे हैं सही हो सकता है जब हम उसमें घुल जायें और वही चीज जो सही है नजर के सामने आ जाय। जो कोई उस रास्ते पर जाता है, वही चीज उसके सामने आती है। अब आप सोच सकते हैं कि इसमें कुछ शायराना बातें हैं जहाँ अतिशयोक्ति की भी सम्भावना रहती है। हाँ, प्यारे भाई, असली चीज को दिखाने के लिए उसके पास पड़ोस कुछ रचना करने से उसे विचारों द्वारा समझने में सहायता मिलती है। मैं भी उससे काम लेने को अकसर मजबूर हो जाया करता हूँ। मिसाल के लिए मैं एक पंक्ति लिखता हूँ :—

"प्रेमी दुर्बल है और प्रिया बहुत सुकुमार है। कोई और घूँघट हटाये।"

अब यदि आप इसके अर्थ का मनन करें तो यह प्रमाणित हो जायेगा कि प्रेमी और प्रेमपात्र दोनों क्रियाशून्य हैं। जो असली हालत है, अर्थात् वह हालत जो असलियत है, इसी तरह अभिव्यक्त होती है।

हमारा सिद्धान्त है कि मनुष्य जब पहले पैदा हुआ तो वह पूर्ण था। इसलिए यह स्पष्ट है कि यह गाँठें आदमियों की खुद

पैदा की हुई हैं और जो मूल स्रोत तक निगाह के पहुँचने में बाधक हैं। उसके काम काज ने उसके खुद के अन्दर एक संसार निर्मित कर दिया है। कारण है कि सृष्टिकर्ता ने तो हमें शुद्ध और स्फटिक के समान स्वच्छ दशा में भेजा। और यही श्रेष्ठ सृष्टिकर्ता की पहचान है। अपने ऊपर आई हुई गंदगी और धूल का दायित्व हमारा ही है। हमने खुद संस्कार बनाये हैं जो परदे पर परदा बनते गये और जिन्होंने हमें, कोये में रेशम के कीड़े की तरह, पूरी तरह ढक लिया। असलियत के महा-सागर से निकलने पर हम एड़ी से चोटी तक केवल असलियत थे। अब चूँकि हमारी प्राथमिक दशा वैसी थी, हमारी निगाह बिना किसी रुकावट के सीधे "उसको" देख सकती थी और उसे "उसका", वेद जिसका रूप माने जा सकते हैं, ज्ञान था। संस्कृत भाषा अधिक प्राकृतिक मानी जाती है। इसका कारण है कि वह प्रारम्भ काल था। और बातचीत करने और एक दूसरे को समझने के लिये वे लोग जैसा अनुभव करते थे वैसे ही जबान को हिलाते डुलाते थे। यदि आप संस्कृत की वर्ण-माला पर गम्भीरतापूर्वक विचार करें तो देखेंगे कि इसमें प्राकृतिक स्पन्दनों के रूप में उतार और चढ़ाव हैं। और इस भाषा में उन्होंने प्रत्येक स्पन्दन का अनुभव करके लिखा और उन्होंने उसे "संस्कृत" (ईश्वरीय) कहना शुरू किया। दैवी संदेश उन्हें किसी विशेष भाषा के मार्फत नहीं मिला। दैवी संदेश अब भी आते

हैं पर अधिकतर और सही सही उनके पास जिन्होंने अपनी मूल अवस्था फिर से प्राप्त कर ली है और जो मूलस्रोत से जुड़ गये हैं। और वह सदा व्यक्ति को उस भाषा में आता है जो वह जानता है। वह मन में कौंधती है और उन शब्दों के मार्फत जिन्हें उसने सीखा है, उसे उसका पता चलता है। स्वामी विवेकानन्द ने लिखा है कि दैवी संदेश अधिकतर कविता के रूप में प्रकट होते हैं। पर वैसा होता नहीं, कम से कम एक सच्चे जिज्ञासु के सम्बन्ध में जिसे पास पड़ोस की चीजों में फँस कर असलियत को खोना नहीं चाहिए। पास पड़ोस उस चीज की ओर इशारा करते हैं जो उनसे जुड़ी होती है, जैसे धुँआ उस आग की ओर इशारा करता है जिसका वह धुँआ है।

गुरुओं और शिष्यों की किस्में

कभी कभी मैं इन सवालों पर गौर करता हूँ: "इस गिरावट की क्या वजह है? कौन सा रंग इस सारी चमक दमक का जिम्मेदार है? मानव मन में उत्तेजना कौन पैदा करता है? हमारी आँखें क्यों इधर उधर घूमती रहती हैं और नालियाँ और गढ्ढे बनाती हैं? यह सब क्या है और कौन इसके लिए जिम्मेदार है? किसने ऐसा पर्यावरण बनाया—ईश्वर ने या खुद इंसान ने? कौन उस पर गिलाफ पर गिलाफ चढ़ाता गया?"

जो जवाब मुझे मिलता है वह यह है : ईश्वर ने हमें रचा ताकि हमें स्वतंत्रता, सच्ची स्वतंत्रता, मिल सके। पर उस काल की घटनाओं ने क्रम को एक अलग ढंग से मोड़ दिया। हमारा मन मूल स्वतंत्रता से भटक कर इन्द्रियों की ओर दौड़ पड़ा। हमें भी ऐसा मजा आया कि इसे बढ़ावा मिला। जिनका इन्द्रियों की ओर झुकाव हुआ वे उन्हीं में डूब गये। अगर वे उनके बाहर निकले भी, तो उन्होंने केवल वे ही चीजें बनाईं जिन्होंने उनकी इन्द्रियों को बढ़ावा दिया और सन्तुष्ट किया और वे उन चीजों से ऊपर नहीं उठ सके। उनका मिलना ऐसे लोगों से हुआ जिन्होंने उनसे ऐसी बातें बताईं जो उन्हें अच्छी भी लगीं क्योंकि वे उस केन्द्र का समर्थन करती थीं जो उन्होंने अपने लिये रचा था। यह कैसे घटित हुआ ? यह उन लोगों से संपर्क के कारण हुआ जो रस तो इन्द्रियों में लेते थे किन्तु ऊपर आकाश की ओर देखने का स्वांग करते थे। वे हमारे महात्मा हैं। आप और हम चाहते हैं कि लोग अपने बनाये केन्द्रों का त्याग कर दें। पर वे ऐसा करने को तभी तैयार होंगे जब उनका रचा केन्द्र ईश्वरीय केन्द्र में शामिल मिलेगा। ये शब्द बहुत कठोर लग सकते हैं पर मैं यह लिखने के लिए मजबूर हूँ कि भेड़ों की रखवाली भेड़ियों के हाथों में है और सारा झुंड तितर-बितर है। अब भाई, उन सज्जनों की किस्मों पर गौर करिए जो हमारे बीच होने वाली

प्रायः हर चीज के लिए जिम्मेदार हैं और जिनमें से कुछ को हम गुरु मानते हैं। वे निम्नलिखित हैं :—

(१) गुरु सिफली—सबसे नीचे दरजे के गुरु
(२) गुरु किताबी—किताबों और ज्ञान वाले गुरु
(३) गुरु अज़ली—जन्मजात गुरु
(४) गुरु फ़ज़ली—उच्चतर दरजे के गुरु
(५) गुरु अज़ली फ़ज़ली—जन्मजात सबसे ऊँचे दरजे के गुरु

सबसे नीचे दरजे के गुरु वे हैं जो हमें भूत-प्रेतों की पूजा करने को कहते हैं और जिनको कुछ टोटकों की जानकारी है। किताबी गुरु वे हैं जो महज किताबों के बल पर दूसरों को अभ्यास करने को कहते हैं। उन्हें अभ्यासों के प्रयोजनों से और उन दशाओं से जिनमें वे लाभकर सिद्ध होते हैं, कोई मतलब नहीं। जन्मजात गुरु वे हैं जो विधियाँ बताते रहते हैं ताकि लोगों को किसी क्षेत्र में पूर्णता प्राप्त हो जाय बशर्ते कि वे भँवर में न फँस जाँय। पर यदि संयोगवश वे फँस जाते हैं, तो उन्हें छुड़ाना इन गुरुओं के बस का नहीं है। मैंने ऊँचे दरजे के गुरुओं के लिए जिन्हें ईश्वर के अनुग्रह और कृपा का आनन्द सदा मिलता रहता है और जिनमें उस अनुग्रह को, दूसरों को सुधारने के लिए, काम में लेने की सामर्थ्य है—अज़ली शब्द काम में लिया है। एक और किस्म अज़ली-फ़ज़ली की है जिसका मिलना

बहुत कठिन है। सबसे ऊँचे दरजे का यह गुरु सर्वश्रेष्ठ मूल अवस्था में पहुँचा हुआ और मूल से सदा जुड़ा हुआ होता है। इसलिए भाई, हमें ऐसे ही गुरु की खोज करनी चाहिए और यदि ऐसा गुरू न हासिल हो तो फज़ली गुरु से काम चलाना चाहिए। किताबी गुरु में हर तरह की शंका की गुंजाइश है। यह बिलकुल मुमकिन है कि उसका चाल चलन ठीक न हो। पर फ़ज़ली और अज़ली-फ़ज़ली गुरुओं के बारे में तो ऐसा हो ही नहीं सकता। जिन लोगों का मन कुछ भी विश्वास न करने वाला है वे इसका विश्वास नहीं करेंगे चाहें आप कितनी ही बार इसे दोहराते रहें। कबीर के शब्दों में "मैं किसे यकीन दिला सकता हूँ जब पूरा परिवार ही अंधा है ?"

जहाँ तक अज़ली गुरु (जन्मजात गुरु) की बात है, यद्यपि ऐसा गुरु ज्वार और भाटा से मुक्त मूल दशा से संयुक्त होता है, पर उसमें अपनी आन्तरिक दशा से दूसरों को प्रेरणा देने की क्षमता नहीं होती। पर फ़ज़ली गुरु ऐसा कर सकता है। वह अभ्यासी के अन्दर ईश्वर के अनुग्रह को भी भेज सकता है। इसके दो प्रकार हैं। जब अनुग्रह उसके संकल्प किये बिना स्वतः उसमें प्रवाहित होता है तो वह अपना भाग दूसरों की ओर भेज सकता है। अनुग्रह का प्रवाह होने के पूर्व वह ऐसा नहीं कर सकता। जो बोधपूर्वक अनुग्रह को भेज सकता है उसमें जब चाहे तब अनुग्रह को अन्तर्भावित करने और स्थानान्तरित करने

की क्षमता है। हमारे सहज मार्ग का एक एक प्रशिक्षक जानता बूझता हुआ प्राणाहुति देने वाला है क्योंकि प्रशिक्षण की विधि खुद ऐसी है। और अजली-फ़जली के बारे में क्या कहा जाय? वह पलक मारते जो चाहे सो कर सकता है। ऐसे संत बहुत कम दिखलाई पड़ते हैं।

अब मैं आपको शिष्यों के किस्म भी बताऊँगा :—

(क) स्वार्थी (ख) फ़जली (ग) अहली (घ) भक्त (ङ) मुराद। स्वार्थी शिष्य वे हैं जो सिर्फ अपना मतलब पूरा करना चाहते हैं। मान लीजिये कि एक आदमी को पता लगता है कि अमुक सज्जन महात्मा और भगवान के भक्त हैं, तो वह तुरन्त उनके पास भागता हुआ इस विचार से आयेगा कि उनके सम्पर्क से उसे कोई सांसारिक लाभ होगा। ऐसे आदमी जिनको केवल दुनियावी मामलों से मतलब रहता है कोई काम नहीं करते। वे सत्संग में केवल अपने स्वार्थ की पूर्ति के लिए शामिल होते हैं। वे खुशामद के जरिये अपना काम करा लेते हैं। उसके बाद वे खिसक जाते हैं। अगर उनका काम पूरा नहीं होता, तब भी वे पीठ फेर लेते हैं। उन्हें प्यार और लगाव से कोई सरोकार नहीं रहता।

फ़जली शिष्य वे होते हैं जो ध्यान में कभी कभी बैठते हैं— तब जब सुखद वातावरण के कारण उनका मिजाज ठीक रहता है। उनको दिल से कोई लगाव नहीं रहता। और अहली वे

होते हैं जिनमें ऊँची किस्म की पूजा के संस्कार होते हैं और जो पूजा करना और करते रहना चाहते हैं। उनमें से कुछ की तरक्की हो सकती है और भक्त के दरजे तक पहुँच सकते हैं। पर कुछ ऐसे होते हैं जिनकी शुरुआत ही भक्त की दशा से होती है और भक्त वह होता है जो अपने गुरु को बहुत अधिक प्यार करता है। वह अपने को अन्दर से गुरु से बराबर जोड़े रहता है। इस तरह के लोगों में वे सारे गुण होते हैं जो एक शिष्य में रहने चाहिए। इन भक्तों में से, मुश्किल से एक या दो मुराद की दशा हासिल करते हैं। मुराद वह है जो अपने गुरु का प्रेम-पात्र हो जाता है। दूसरे शब्दों में गुरु का ध्यान सदा उस पर लगा रहता है। उसे परमप्रिय व्यक्ति भी कहा जा सकता है और ऐसे लोग बहुत कम मिलते हैं। इन दिनों मुराद शायद ही मिलते हैं और उसी तरह गुरु भी दुर्लभ हैं। श्रद्धेय लालाजी ने मुझे अपने एक खत में लिखा कि "इन दिनों मुरीद तो उतने दिखलाई पड़ते हैं जितने शरीर के रोमछिद्र पर मुराद बहुत दुर्लभ हैं।"

पदार्थ की असलियत

प्यारे भाई, आपने ठीक ही लिखा है कि पदार्थ की असलियत आपकी समझ में नहीं आती। अगर चीनी की गुड़िया में जान फूँक दी जाय तो वह अपनी असलियत नहीं समझ सकती। मतलब यह है कि पदार्थ में लगातार रहते रहते हम खुद

अपना माल अर्थात् 'वास्तविकता' खो बैठे है। केवल यही बाधा है। प्रकृति साधक से कुछ भी छिपाकर नहीं रखना चाहती क्योंकि रहस्य को जटिलतापूर्ण कहा जा सकता है और जहाँ कहीं भी जटिलता होती है, उसे माया के अतिरिक्त और कुछ नहीं कहा जा सकता। प्रकृति एक खुली किताब है। पर हमने अपनी निगाह इतनी उलटी कर ली है कि हम उसकी तरफ कभी देखते तक नहीं। और प्यारे भाई, भोंडे ढंग से यह कहा जा सकता है कि हमारी खोपड़ी ही उलटी हो गई है। असलियत तब जाहिर होती है जब उससे उलटी ओर खड़े होते हैं। यानी यदि हम पदार्थ के विषय में विचार करें तो हम आत्मा की ओर भी खिसकते हैं। तब दोनों को तौल जोख कर हम सच्चाई का कुछ अनुमान लगा सकते हैं। अब बेशक मुझे वैज्ञानिकों का भंडाफोड़ करना है—आपको उस दल में शामिल नहीं करता। लोगों ने मुझे बताया है या खुद मेरे ही दिमाग में यह बात आई है कि वैज्ञानिकों ने इस हद तक काम किया है कि उन्होंने पदार्थ की शक्ति को मनुष्य की दासी बना दिया है। अब योग के लक्ष्य से, जो प्रकृति पर अधिकार पाना है, अधिक दूर और क्या हो सकता है? पर प्यारे भाई, मामूली सर्कस के खिलाड़ियों ने भी बाघ जैसे जंगली जानवर को वश में लाकर अद्भुत करतब दिखाये हैं। विज्ञान की चीजों को दूसरी प्रभावहारिणी चीजों द्वारा पराभूत किया जा सकता है पर इस खूँखारपने को किसी तेजाब से नहीं दबाया जा सकता। इसलिए सर्कस का खिलाड़ी

वैज्ञानिक से बहुत बढ़ कर है। प्यारे भाई, इन्सानी दिमाग के विकास के कारण पदार्थ की शक्ति पर अधिकार पाया जा सकता है। पर आध्यात्मिक दिमाग का काम या विकास कुछ और ही चीज है जहाँ पदार्थ की ऊर्जा काम नहीं करती। इसमें ईश्वरीय समझदारी है जब कि उसमें मानवीय समझदारी है।

आपका विचार कि मनुष्य स्वभाव से दार्शनिक है, सही है और इसके प्रमाण भी हैं। जैसे ही बच्चा जन्म लेता है और थोड़ा बहुत देखने लगता है, उसके अन्दर एक कुतूहल का भाव आ जाता है जो सारे दुनियावी और रुहानी विज्ञान का सार है। कुछ लोग फलों का स्वाद लेने में लग जाते हैं, जब कि और लोग पेड़ गिनने में ही लगे रहते हैं। पर इन सबका आधार कुतूहल है। वैज्ञानिक पदार्थ की जटिलता में फँस जाते हैं पर जिज्ञासु इसे छोड़ कर उस छवि के पास आता है जिसके यह सब प्रतिरूप हैं। जब हमें संखिया के प्रभाव का ज्ञान हो जाता है तब हम मान लेते हैं कि हर चीज जिसमें यह मिला रहता है विष हो जाती है। या फिर इससे मिली हर चीज को हम विषैली समझ लेते हैं। अब इस जहर के कारण ही चीज जहरीली हो जाती है क्योंकि संखिया का यह गुण उस चीज के रेशे रेशे में रिस जाता है जिसमें वह मिलाया जाता है। ऊर्जा भी पदार्थ में उसी तरह काम करती है। यह उदाहरण आपके उस सवाल का हल है कि चैतन्य किस प्रकार सब में विद्यमान

भी है और साथ ही सबसे परे भी। आध्यात्मिक प्रगति के दौरान, अभ्यासी को ऐसी दशा हासिल होती है जिसमें पदार्थ का भी अस्तित्व महाप्रलय के बाद नहीं रहता क्योंकि यदि कुछ भी रह जाय तो महाप्रलय एक झूठा नाम होगा। मैं पदार्थ को नित्य नहीं मानता। केवल आत्मा नित्य है और यदि वह सब का कारण है तब एक ऐसा समय आता है जब उसको छोड़ कर और कुछ नहीं रहता। इसलिए यह साबित होता है कि पदार्थ की रचना सृष्टि के निर्माण काल में हुई। यह पदार्थ क्या था ? यह वे मन्थनकारी काम थे जो ठोस चीज बना सकते थे। इस उक्ति में कि हर चीज गोल दिखाई देती है कितना सुन्दर दर्शन निहित है। कारण यह है कि जब उस महान् शिल्पी ने सृष्टि-निर्माण का संकल्प किया और ऊर्जा का उपयोग किया तो क्रियायें गोलाई में प्रारम्भ हुईं जिससे परिपथ बन सके और ऊर्जा काम कर सके। जैसे जब आप प्राणाहुति देते हैं, तब भी आपकी ऊर्जा चक्राकार ढंग से काम करती है ताकि अभ्यासी उससे प्रभावित हो सके। और हम ध्यान में भी सत्संगियों का घेरा बना कर बैठते हैं क्योंकि इससे भी उनको मदद मिल सकती है। अब जब यही ऊर्जा घनी हो गई तो यही क्रियाओं के वेग के कारण ठोस या पदार्थ कहलाई। अब आपको अभ्यासी के अन्दर से यही ठोसपन हटाना है ताकि वह सिर से पैर तक चैतन्य हो जाय। मौलाना रूमी ने जो एक बादशाह भी थे और

फकीर भी, और जो शम्स-इ-तब्रेज़ के शिष्य थे, कहा है : "वह स्वयं मुक्त था और अपने द्वारा ही बन्दी भी हुआ।"

यह वास्तव में सृष्टि के एकत्व का वर्णन है, जिसे मैं नहीं मानता। मैं अभिव्यक्ति के एकत्व को मानने वाला हूँ। फिर भी यह इस बात पर काफी प्रकाश डालती है कि ऊर्जा ने एक भिन्न मोड़ ले लिया।

आपने लिखा है कि इस भौतिकता या आध्यात्मिकता पर पूरा अधिकार पाने के लिए कोई विधि होनी चाहिए। जब एक कारखाना चालू रहता है, तो ऊर्जा इंजन से आती है और इसके हर पुरजे को घुमाती है। अब यदि आप इसको अपने वश में लाना चाहते हैं और (इसलिये) इसका एक पहिया पकड़ लेते हैं तो नतीजा यह होगा कि आपके हाथ के कुचल कर टुकड़े-टुकड़े हो जायेंगे। उस तरह से आप उसको अपने वश में नहीं ला सकते। यदि आप उस मशीन को बंद करना चाहते हैं तो उस स्रोत पर अधिकार कीजिए जहाँ से इसको ऊर्जा मिल रही है। तब मशीन बंद हो जायेगी। अब यह साफ जाहिर है कि सांसारिकता पर अधिकार पाने के लिए आपको आध्यात्मिकता (चेतना) पर अधिकार पाना होगा और हम सब वही करते हैं। आप पहले से ही आध्यात्मिकता पर अधिकार पाने के उपाय जानते हैं—जिसके लिए अभ्यास और सत्संग नितान्त आवश्यक हैं। फिर भी मैं इस सिलसिले में कुछ बता रहा हूँ : अध्यात्म पर अधिकार पाने

के लिए आपको उसमें, जो अध्यात्म (चेतना) का कारण है, घुसना होगा। अब उसे कैसे हासिल किया जाय? जब हम उसकी ओर इस तरह उन्मुख होंगे कि उसकी विशुद्धता और ताजगी से आवेशित हो जायें, तब हमारा वातावरण बदल जायेगा और स्वाभाविकता की सृष्टि होगी। और आप जो भी चाहेंगे घटित होने लगेगा। प्यारे भाई, तैरते जाओ। उद्गम निश्चयतः मिलेगा। या अगर रुझान इतनी तेज हो जाती है कि नदी खुद आपके अन्दर अपने को उंड़ेल डालती है, तब फिर अभ्यास की कोई जरूरत नहीं रह जायेगी।

अब मैं आपके प्रश्न "मैं पदार्थ की असलियत नहीं समझ पा रहा हूँ" का उत्तर देकर आपको थोड़ी खुशी भी देना चाहूँगा। आप पदार्थ की असलियत तब समझेंगे जब आप अपनी असलियत का अनुभव करेंगे। तब आप पदार्थ को संचालित तक कर सकते हैं।

भाग ३

अमृतमयी वर्षा

"यद्यपि अपने को बहुत बुद्धिमान समझना निःसन्देह मूर्खता है, किन्तु अपने को बहुत मूर्ख या दुर्बल समझना और बड़ी मूर्खता है। हम जैसे भी हों, हमें अपने को ईश्वर की याद के प्रति समर्पित कर देना चाहिए और उनके आदेशों का जो हर किसी के लिए प्रायः एक हैं, पालन करना चाहिए। हमारे सामान्य कर्तव्यों की अपरिहार्य विशिष्टतायें उनमें सन्निहित हैं।"

लोग एकाग्रता में डूबना चाहते हैं क्योंकि इसमें इन्द्रियों को आनन्द मिलता है। स्पष्ट है कि आध्यात्मिक साधना में यह सहायक नहा हो सकता। एकाग्रता सीधे ही विचारों के दमन से संबन्ध रखती है। यह ख्याल हमारे मन में, सम्मोहन की जानकारी के बाद आया क्योंकि उसमें विचार का भौतिक बल बराबर काम में लाया जाता था। पर उससे कोई आध्यात्मिक मतलब सिद्ध नहीं हो सकता। यह किसी चीज की प्रकृति या विशिष्टता उघाड़ कर बता सकता है पर वह उसकी प्राप्ति में किसी भी तरह सहायक नहीं हो सकता। इसलिए वह ईश्वर की उपलब्धि में साधनरूप नहीं हो सकता। उलटे, इसका झुकाव लोगों को असलियत से दूर रखने की ओर है। ध्यान का आधार सर्वथा आध्यात्मिक है जब कि एकाग्रता का आधार केवल अहं भाव है। जब आप एकाग्रता साधना चाहते हैं तो निश्चय ही 'आप' वहाँ रहते हैं, पर जब आप ध्यान करते हैं तो आप किसी उच्चतर चीज की प्रतीक्षा में रहते हैं। इस तरह आप अहं भाव से दूर रहते हैं।

❀ ❀ ❀ ❀

पूरी सफलता पाने के लिए आत्म-विसर्जन एक मात्र रास्ता है। उसी का लगातार अभ्यास करना चाहिए। निस्सन्देह

प्रेम और भक्ति उसकी अपरिहार्य विशिष्टतायें हैं। अपने को विसर्जित करने पर शाश्वत जीवन, जो हासिल करने लायक सच्चा जीवन और जीवन का असली लक्ष्य है, मिल जाता है। गुरु के जीवन-काल में वह ज्यादा आसानी से पाने लायक होता है क्योंकि तब उनकी शक्ति निरन्तर प्रवहमान रहती है। उसके बाद, जैसा लोग कहते हैं, "हर पतिंगे की बिसात नहीं कि बुझी हुई शमा पर जल मरे" (सोख्ताँ बर शमा कुश्त आरे हर परवाना नेस्त)।

❀ ❀ ❀ ❀

मनोमय प्रदेश, जो हृदय प्रदेश के बाद पड़ता है, अहं का क्षेत्र है। जब यह पार कर लिया जाता है तो व्यक्ति उस स्तर पर पहुँचता है जहाँ अहं भाव बहुत विरल अवस्था धारण कर लेता है। इसके आगे ज्यों ही अभ्यासी का केन्द्र-प्रदेश में प्रवेश होता है, अहं भाव पहचान में बदल जाता है। शुरू की अवस्थाओं में अहं भाव स्थूल प्रकार का होता है पर जैसे जैसे अभ्यासी उस क्षेत्र के चक्रों को एक एक करके पार करता जाता है वह अधिकाधिक विशुद्ध होता जाता है यहाँ तक कि वह अपनी पूर्ण विशुद्ध अवस्था धारण कर लेता है जिसे लगभग पूरे तौर पर अहं भाव का विनाश मान सकते हैं।

❀ ❀ ❀ ❀

महिलाओं के लिए ठीक निर्धारित समय पर पूजा करना उनके विविध कर्तव्यों के कारण, संभव नहीं है और इसलिए

उनके बारे में इसके लिए आग्रह नहीं किया जाता। पर वे अपना खाली वक्त इसमें लगा सकती हैं। उनके लिए यह एक खास रियायत है। इसके अतिरिक्त यदि वे अपने गृहस्थी के कामों में इस विचार के साथ लगी रहें कि वे ईश्वर के आदेशानुसार अपना कर्तव्य-पालन कर रही हैं तो वह सब पूजा में बदल जायेगा और अपनी ओर से बोधपूर्वक कोशिश के बगैर वे सारे समय इसी के साथ (पूजा-भाव में) रहेंगी।

❀ ❀ ❀ ❀

शिक्षा से केवल दिमाग का विस्तार होता है जब कि मन के विस्तार के लिए सबसे आवश्यक तत्त्व संस्कृति है जो हमारे विचार और कार्य के ढंगों को व्यवस्थित करती है। बिना दिल की किताब को ध्यान से पढ़े, महज किताबों की पढ़ाई से कुछ नहीं होने का। लेकिन चूंकि मैं बहुत पढ़ा लिखा नहीं हूँ इसलिए यह हो सकता है कि मैं शिक्षा का अर्थ गलत समझता होऊँ। मैंने जन्म लिया अज्ञान की अवस्था में, और अब मैं और अधिक अज्ञानी हूँ क्योंकि जब अध्ययन के लिए मैंने अपने दिल की किताब खोली, तो उसमें केवल एक शब्द–अज्ञान–पाया।

❀ ❀ ❀ ❀

सुकरात कहता है कि ज्ञान ही सद्गुण है। सद्गुण से उसका आशय इच्छाहीनता से है। उसके अनुसार वही शिक्षा

का सार है। यदि उच्च शिक्षा प्राप्त करके आदमी उस स्तर तक पहुँच जाता है, तो मैं समझता हूं कि शिक्षा का उद्देश्य—और वह एक आध्यात्मिक अवस्था है—पूरा हो गया। वह कैसे प्राप्त किया जाय ? उसके लिए सीधी विधि सतत स्मरण है। यदि "विचार की अविच्छिन्न कड़ी" ये शब्द उसमें जोड़ दिये जाँय, तब विधि मुकम्मल हो जायेगी।

❀ ❀ ❀ ❀

आप बताते हैं कि आप अकसर छोटी छोटी बातों पर खीझ जाते हैं। आपने अपनी किताबों में इस बुराई के खिलाफ बहुत कुछ पढ़ा होगा फिर भी आप इस पर काबू नहीं पा रहे हैं। तब आपकी पढ़ाई से आपको क्या लाभ पहुँचा ? स्वामी रामकृष्ण परमहंस के बारे में कहा जाता है कि जब वे बचपन में बच्चों के एक स्कूल में पढ़ रहे थे, उन्हें एक पाठ याद करने को दिया गया। वह था : "सदा सच बोलो"। वह उसमें लगे रहे। जब कभी अध्यापक उनसे पूछते थे कि तुमने उस दिन वाला पाठ याद कर लिया कि नहीं, तो वे उत्तर देते थे, "जी, अभी नहीं।" कुछ समय के बाद उन्होंने अध्यापक को बताया कि मुझे वह पाठ ठीक तरह से याद हो गया है। कुछ अचम्भे के साथ अध्यापक ने उनसे पूछा कि एक छोटी पंक्ति याद करने में तुम्हें इतना अधिक समय क्यों लगा। उन्होने नम्रतापूर्वक जवाब दिया कि तब तक मैं अपने जीवन के साधारण क्रम में उसे लागू करना नहीं सीख पाया था।

पाश्चात्य विचार के चटकीले रंगों में रंगी होने के कारण हमारी वर्तमान शिक्षा का झुकाव जिन्दगी की जरूरतों को बेइन्तहा बढ़ाने की तरफ है। जिन्दगी भर लोग अपने विचार और प्रयास के पूरे बल से उनको हासिल करने में लगे रहते हैं। वही उनकी जिन्दगी का खास मकसद हो जाता है। हार और असफलता का उन पर दुःखदायी प्रभाव पड़ता है और उनका मिजाज बिगड़ जाता है। गुस्से का असली कारण सामान्यतः अपने खुद की हठीली प्रकृति है। उसके प्रभाव से बना जिद्दी स्वभाव विवेक को ढक लेता है। सही और गलत का भेद मिट जाने से वह अपने ही मत पर अड़ा रहता है और दूसरे के दृष्टिकोण को कोई स्थान नहीं देता। निस्सन्देह अध्यात्म के मार्ग में यह एक भारी रुकावट है। अध्यात्म मार्ग के पथिक को मन और चेतना में यथासम्भव हलका होना चाहिए। उसे तो अपने लक्ष्य की भावना के भार तक से मुक्त रहना चाहिए। यही वास्तव में दृढ़ संकल्प का असली राज है जो मैं आज आपसे बता रहा हूँ। ऐसी दशा में, जो भी विचार अन्दर आकर बैठ जाता है, प्रतिफलित होता है। इस अवस्था में स्थायित्व ऊँचे दरजे की उपलब्धि है।

❀ ❀ ❀ ❀

मेरी कामना है कि आप सदा प्रसन्न रहें पर प्रसन्नता अपने कर्तव्य के यथोचित पालन में है। गीता इस पर इतना अधिक बल देती है। वास्तव में अध्यात्म का यही प्राण है। जिनसे

हमारा सम्बन्ध है उन सबके प्रति अपने कर्तव्य के मार्ग में जो भी कठिनाइयाँ और दुश्चिन्तायें मिलती जायें हमें उनका निर्भीकता के साथ सामना करने के लिए तैयार रहना चाहिए। अपने उत्तरोत्तर जन्मों की तकलीफों की तुलना में यह महज छोटा सा त्याग है। मैं सिर्फ एक चीज लिए आग्रह करता हूँ—वह है संसार और ईश्वर के प्रति अपने कर्तव्य का निर्वाह और सिर्फ इतना ही वर्तमान जन्म में मुक्ति पाने के लिए सब कुछ और पर्याप्त है।

❀ ❀ ❀ ❀

दूसरों के तानों और झिड़कियों को शान्तिपूर्वक सह कर और हमीं गलती पर होंगे यह अहसास लाकर, हमें सहिष्णुता की आदत डालनी चाहिए। उस महान् ध्येय की प्रप्ति के लिए यह कोई बड़ा त्याग नहीं है। यदि मेरी बात आपको जँचती हो तो कृपया उस पर अमल करने की कोशिश करिए। इससे आपको अधिक शान्ति मिलेगी। यदि आप इसके लिए अपने को अक्षम पायें तो विनम्र हृदय से प्रार्थना में लग जाइये। यह करिये और देखिये कि क्रोध को आप वश में ला पाते हैं या नहीं।

❀ ❀ ❀ ❀

लोग किसी काम में उसके प्रति आकर्षण के कारण लग जाते हैं। कुछ वैसा ही आकर्षण आदमी को ईश्वरत्व की ओर खींचता है। इस प्रकार, पूजा, भक्ति, तपस्या, शान्ति और

परमानन्द—इनके आकर्षण होते हैं। वे असली चीज के लिए नहीं, बल्कि महज उस आकर्षण के लिए, प्रयास में लगते हैं। पर जब तक ऐसा केवल आकर्षण के लिए होता है, तब तक यह सिर्फ मनबहलाव भर है और इसलिए असली उद्देश्य से एकदम दूर है। वस्तुतः आत्मानुभव में न कोई आकर्षण है, न आनन्द है, उसमें शान्ति, परमानन्द या आत्मानुभव का बोध तक नहीं होता। यह एक स्थिर अवस्था है—अविच्छिन्न और अपरिवर्तमान।

❀ ❀ ❀ ❀

संसार स्वप्न की तरह मिथ्या कहा जाता है और विद्वान गुरु उस तरह सोचने के लिए लोगों को प्रेरित करते हैं। पर जब तक आदमी सपने में रहता है, वह उसके लिए मिथ्या नहीं होता। उसी तरह जब तक हम संसार के इस स्वप्न लोक में रहते हैं, यह हमें कभी मिथ्या नहीं लग सकता। सपना हमें तभी झूठा लगता है जब हम जग जाते हैं, या दूसरे शब्दों में हम उससे दूर हो जाते हैं। उसी तरह हमें संसार केवल तभी मिथ्या लग सकता है जब हम भौतिक चेतना के क्षेत्र से परे चले जाते हैं। पर यह महज सोचने, कल्पना करने या "संसार मिथ्या है", "सब कुछ माया या भ्रम है", इस तरह के शब्दों को बराबर दुहराते रहने से प्राप्त नहीं हो सकता। उस दशा को विकसित करने के लिए समुचित साधन अपेक्षित हैं।

❀ ❀ ❀ ❀

किसी विशेष बिन्दु या क्षेत्र में अभ्यासी द्वारा प्राप्त दशा कभी-कभी (उसके) ऊपर के क्षेत्रों में भी गुरुदेव के अनुग्रह से प्रतिबिम्बित होती है, जिसका नतीजा यह होता है कि वे किसी हद तक मानों जागृत मालूम होने लगते हैं। उस हालत में, समझने के लिए अभ्यासी की वहाँ तक पहुँच मानी जा सकती है। इस तरह, पहुँच दो प्रकार की होती हैं। मेरे गुरुदेव के उर्दू शब्दों में एक है 'अक्सी' या प्रतिबिम्बित और दूसरी 'कसबी' या अर्जित।

❀ ❀ ❀ ❀

मेरे अनुभव में यह भी आया है कि प्रशिक्षण के पूरा होने के पहले भी ईश्वर अपने ऊपर कुछ जिम्मेदारी ले लेता है। पर जब वह अभ्यासी का पूरा भार अपने ऊपर ले लेता है, तो गुरु का काम करीब करीब समाप्त हो जाता है, गो कि कुदरत के काम को आसान करने के लिए, जरूरत पड़ने पर, उन्हें सफाई करती रहनी पड़ती है। मेरी अतिचेतना मुझ पर यह जाहिर करती है कि जब अभ्यासी केन्द्रीय प्रदेश में प्रविष्ट हो जाता है तो ईश्वर उसका भार ले लेते हैं और यह सभी मामलों में लागू होता है।

पर ईश्वर से आवेशित होने पर भी मानवीयता एकदम गायब नहीं हो जाती बल्कि फिर भी कायम रहती है गो कि वह केवल साधारण स्तर की होती है। इसलिए जब कोई

ईश्वर से बहुत नजदीकी पा लेता है तब भी उसमें मानवीय प्रेरणा बनी रहती है।

❀ ❀ ❀ ❀

जो शक्ति हमें ऊपर से मिलती है, आज्ञा-चक्र उसका वितरक है। जो लोग आज्ञा-चक्र पर ध्यान करते हैं उन्हें अस्थिर दशा का अनुभव होता है, सुस्थिर दशा का नहीं। मुझे उस तरह के ध्यान का कोई अनुभव नहीं है पर मैं उसे इसी तरह का समझता हूँ। 'आज्ञा' की अपेक्षा 'सहस्रार' पर ध्यान ज्यादा अच्छा है। हमारी अन्तिम पहुँच तब होती है जब (शरीर-) संरचना का विसर्जन होता है और पूर्ण निषेध की अवस्था में हमें अपना कहीं भी भान नहीं रहता। एक उर्दू शायर निम्नांकित शेर में इसी हालत का हवाला देता है :—

हम वहाँ हैं जहाँ से हमको भी
कुछ हमारी खबर नहीं आती।"

जब काम-धाम की गरज से हम थोड़ा नीचे खिसकते हैं तो हर कण में हमें अपनी ही (ईश्वरीय) खुशबू का अनुभव होता है। जब तक कि उस मंजिल की दशा की एक क्षणिक झलक भी न मिले, तब तक उस दशा को समझ पाना बहुत कठिन है।

❀ ❀ ❀ ❀

शास्त्रों में परमानन्द का वर्णन पढ़ कर अभ्यासी केवल उसी को ध्यान में रख कर उसे बड़ी प्रशंसा की दृष्टि से देखने

लगते हैं। निस्सन्देह यह बहुत शान्तिदायक है, पर यही कदापि अन्त नहीं है। जिस चीज की मैं सारे अभ्यासियों के लिए कामना करता हूँ वह यह है कि वे परमानन्द और निरानन्द दोनों से मुक्त हों। मैं इसी के लिए प्रार्थना करता हूँ। यदि कोई मेरी प्राणाहुति के प्रभाव को ध्यान से देखे तो उसे परमानन्द के मोहक प्रभाव का—यद्यपि बहुत थोड़ा—पता लगेगा, क्योंकि मैं ईश्वरानुभव का सार उनके अन्दर आरोपित करना चाहता हूँ, बिना इस बात की परवाह किये कि यह उन्हें रुचिकर है या नहीं। हाँ, कभी कभी मैं हलके आनन्द की भी एक खुराक दे दिया करता हूँ ताकि उन्हें ऊब न लगे।

इस सिलसिले में मैं एक घटना बयान करूँ। एक बार, उस वक्त की अपनी रूहानी हालत के सिलसिले में, मैंने अपने गुरुदेव से पूछा, "क्या यही वह परमानन्द की अवस्था है जिसकी इतनी अधिक चर्चा होती है और जिसके लिए आपने अनुग्रहपूर्वक इतने दिनों तक मशक्कत की?" उन्होंने मुस्कराते हुए जवाब दिया, "क्या होगा अगर जिस हालत में तुम अभी हो, चाहे वह बेस्वाद हो, तुमसे वापस ले ली जाय?" मैंने तुरन्त जवाब दिया कि उस हालत के वापस लिये जाने के मुकाबले, मैं मर जाना ज्यादा पसंद करूँगा। अपनी वर्तमान अवस्था प्राप्त करने के पूर्व, मैं जब मग्न होता था, परमानन्द की दशा में, जिसे मैं पार कर चुका था, लौट जाया करता था।

पर अब इस निरानन्द—निस्वाद—की दशा से मैं एक क्षण के लिए भी परमानन्द की दशा में उतरना पसन्द नहीं करता।

मेरा बयान वे ही लोग कबूल करेंगे जो धार्मिक साहित्य में निष्णात हैं या वे जो पहले से ही उस निरानन्द की अवस्था में हैं। पर यदि कोई विवेचन करेगा, तो इस निष्कर्ष पर पहुँचेगा कि यह वह उच्चतर स्थिति वाला मन है जो परिष्कृत ढंग से अपने ही मार्ग से चलना चाहता है। आत्मा में रुचि अरुचि का प्रश्न नहीं उठता। वह जैसी है वैसी है। प्रगति की उच्चतम अवस्था में वैयक्तिक मन उच्चतर कार्य का साधन बन जाता है।

❀ ❀ ❀ ❀

मैं आज्ञा-चक्र को ध्यान का बिन्दु इसलिए नहीं बनाता कि उसमें पिंड प्रदेश की शक्ति आती है और वह उसे निम्न प्रदेशों में वितरित करता है। यदि कोई इस बिन्दु पर ध्यान करे तो उसे ध्यान में बाधा देती हुई झिलमिलाहट का अनुभव होगा। यदि मैं कहूँ कि माणिक के रंग जैसे बिन्दुओं का (ध्यान में) आना बहुत ऊँची विशुद्ध दशा का ही निशान है तो मैं अपनी ही तारीफ करूँगा, पर सच्ची बात कहनी ही पड़ती है। मुझे पता नहीं कि महात्मा बुद्ध का यही आशय था या और कुछ। तिब्बत के बौद्ध "ॐ मणि पद्मे हुम्" का जप करते हैं। महात्मा बुद्ध का एक चमत्कार है कि वे कमल की पँखुड़ियों से

विभूषित एक स्थान पर बैठे रहे और एक के बाद एक बुद्ध आकाश में उड़ते हुए दिखलाई पड़े। मैं मानता हूँ कि इस तरह बुद्ध की विशुद्धता प्रदर्शित की गई है।

❀ ❀ ❀ ❀

आज्ञा-चक्र या थोड़ा उसके ऊपर प्राणाहुति देने पर अभ्यासी को हलकेपन का अनुभव होता है। चित्सरोवर के काफी ऊपर के बिन्दु पर प्राणाहुति देने पर, यदि वह शक्ति सहन नहीं कर पाता तो प्रकाश का नहीं बल्कि दबाव का, अनुभव होगा। हम उस देश की सन्तान हैं जहाँ सूर्य सदा चमकता है, जहाँ अंधकार का कोई स्थान नहीं है और प्रकाश बिदाई देता है। हमारे योगी धुयें से अग्नि का अनुमान नहीं लगाते। वे सीधे ही उस तत्त्व का दर्शन करते हैं। जब सच्ची सहज अवस्था प्राप्त हो जाती है तो एक एक आत्मा की असलियत और अपने खुद में प्रकृति के रुझान को जाना जा सकता है। थोड़ी एकाग्रता से यह सब उद्घाटित हो जायेगा।

❀ ❀ ❀ ❀

यदि मन अपने उपशामक प्रभाव में संसक्त रहता है, तो इसका मतलब है कि वह अपना खुद का खेल अपने ढंग से खेल रहा है। इसी औजार से सारी सिद्धियाँ और चमत्कार प्रदर्शित किये जाते हैं। जब तक कोई इसका औजार बना रहता है, तब तक वह अपने को इससे ढका हुआ पाता है। ईश्वरीय

आज्ञा और आदेश केवल उनके पास आते हैं जो मन के सम्मोहन के अधीन नहीं होते।

हृदय-प्रदेश शिखर (चोटी) तक है। उसके बाद मन-प्रदेश है जो अनुकपाल-बिन्दु तक जाता है। जैसा कि मैंने "राजयोग का दिव्य दर्शन" में संकेत किया है, उसमें एक अतिचेतना भी रहती है पर वह बहुत सक्रिय नहीं होती।

ब्रह्माण्ड आज्ञा चक्र से, जहाँ पिण्ड प्रदेश को पार करके पहुँचा जाता है, शुरू होता है। इस प्रकार चित्सरोवर ब्रह्माण्ड के अन्तर्गत आता है और सरस्वती का बिन्दु भी। मैंने "राजयोग का दिव्य-दर्शन" (तृतीय संस्करण, पृष्ठ २६) में बताया है कि हृदय प्रदेश पूरे सिर से पैर तक फैला है और समूची सृष्टि इसी दायरे में, अर्थात् शिखर तक, विद्यमान है।

मेरा अनुभव मुझे यह भेद बताता है कि परब्रह्माण्डमंडल के आगे, तीन और प्रदेश हैं जिनके नाम मैंने, उनकी दशा के अनुसार, फ़ारसी में अंकित किये हैं। उसके बाद, अनगिनत बिन्दु हैं जिनकी अपनी अलग अलग दशा है। मैं साधारणतः इन बिन्दुओं को एक-एक करके लेता हूँ।

ये सब बिन्दु सहस्रार (शिखर) में हैं क्योंकि शिखर के बाद हृत्प्रदेश खत्म हो जाता है और मनःप्रदेश शुरू होता है। एक

और प्रकार की अतिचेतन अवस्था भी है जिसका मैंने "राज-योग का दिव्य दर्शन" में विवेचन नहीं किया है क्योंकि यह ईश्वर के लिये उपकरण का काम देता है। अन्य सारी अति-चेतन अवस्थायें, जो साधारणतया कलिकावस्था में दिखती हैं, विकसित की जाने पर पूरे खिले हुये फूल में बदल जाती हैं। परन्तु इस अतिचेतन अवस्था की स्थिति उलटी हुई रहती है और इसकी पँखुड़िया नीचे की ओर मुड़ी होती हैं। जब इसमें गुजरा हुआ अभ्यासी केन्द्रीय प्रदेश में पहुँचता है, तब यह अतिचेतन अवस्था दिव्य शक्तियाँ प्राप्त करने में उसकी मदद करती हैं। पर उसको यह प्रदान करना पूरी तरह ईश्वर की मरजी पर है। उसको बलपूर्वक लेना अभ्यासी के वश के बिलकुल बाहर है। जब कोई अभ्यासी केन्द्रीय प्रदेश में गुरु के प्रति पूर्ण भक्ति और श्रद्धा के साथ प्रवेश करता है तो वह स्वतः जागृत होने लगती है। पर वह केवल अनुभव का विषय है।

केन्द्र स्वयं ईश्वर है: मूल कोश और अन्य सारे कोश उसकी सृष्टि हैं। यदि कोई केन्द्र पर ध्यान लगाना चाहता है तो उसके प्रयास सफल नहीं होंगे, भले ही वह अपनी कल्पना में ध्यान जमाने के लिए केन्द्र को अपनी निगाह के अन्दर ले ले। उसके लिए एकमात्र तरीका वही होगा जिसका इशारा मैंने "अनन्त की ओर" नाम की पुस्तक में दिया है। पर मैं हर किसी को ऐसी कोशिश करने को मना करता हूँ। मैंने इसको, गुरुदेव

के प्रति प्रार्थना करके; दो बार केवल दो या तीन सेकण्ड प्रत्येक बार, कोशिश की थी। वहाँ, किनारे के घेरे पर प्रचण्ड शक्ति होने के कारण, मैंने स्वयं अपने हृदय पर जबर्दस्त रोक लगा दी थी और साथ ही साथ गुरुदेव का शक्तिशाली हाथ भी वहाँ मौजूद था। फिर भी, मैं उसकी झलक ले सका, पर उस पर ध्यान बिलकुल न लगा सका क्योंकि दिल पर दबाव इतना ज्यादा था कि सहा नहीं जा रहा था। इसके अतिरिक्त, उस घेरे के पास फटकना तक बहुत कठिन है क्योंकि वहाँ से पीछे फेंकने वाला एक जबर्दस्त धक्का लगता है। पर गुरुदेव ने ऐसा करने पर मुझे बहुत डाँटा और आइन्दा इसे दोहराने के विरुद्ध चेतावनी दी।

❀ ❀ ❀ ❀

अब सवाल यह उठता है कि मैं इस मामले में इतना द्रवित हुआ ही क्यों—जो स्पष्टतः आध्यात्मिक अनुशासन के घोषित नियमों के विरुद्ध हो सकता है। इस सिलसिले में मैं अपने जीवन की एक पुरानी घटना सुना दूं। करीब तीस साल पहले मेरा ज्येष्ठ पुत्र, जो उस समय इकलौता था, अपने नवें साल में मर गया। मुझे उस समय उतना भी मलाल न हुआ जितना एक पालतू तोते के मरने पर किसी को होता है। उस समय यह बात अपने प्रशिक्षकों में से एक को मैंने इसी तरह बताई थी। यह बात मेरे अभ्यास के आठवें या नवें वर्ष की है। पर अब, चालीस वर्षों के अभ्यास के बाद मैं उसी तरह की घटना से

बहुत अधिक द्रवित हो जाता हूँ। यह विचित्र विषमता क्यों है ? मेरे बुद्धिमान और विद्वान् साथी इसके कारण का पता लगायें और उसे सुलझायें। क्या यह नहीं माना जा सकता कि मेरी उस समय की दशा आज की दशा से ऊँची और श्रेष्ठ थी ? अपने हिसाब से उस समय की अपेक्षा में आज अधिक समुन्नत और गुण-सम्पन्न हूँ। अभी मैं उस रहस्य को अपने तक ही रखे हुए हूँ। हाँ इशारे के लिए मैं इतना कह दूँ कि मानवता और ईश्वरत्व दोनों को साथ साथ चलना चाहिए। पूर्णता की मेरी धारणा यही है।

❀ ❀ ❀ ❀

आपने अपने पत्र में पांच प्रकार की प्रतिमाओं के बारे में, उनमें से प्रत्येक की परिभाषा करते हुए, लिखा है। मैं अपने गुरुदेव द्वारा बताई गई एक और मूर्तिपूजा के बारे में लिख रहा हूँ। उन्होंने कहा था कि यदि आदमी अपनी आदतों का गुलाम है, तो वह भी मूर्तिपूजक है। मैं इसके भी आगे बढ़ कर कहता हूँ कि यदि हम कोई चीज कल्पित कर लेते है और उसका अस्तित्व नहीं होता तो वह भी मूर्तिपूजा है। यदि आदमी अपनी बीवी और बच्चों आदि को प्यार करता है, तो भी वह मूर्तिपूजक है। पार्थिव चीजों से कोई भी लगाव मूर्तिपूजा है। यह पूरी तरह से कैसे खत्म किया जाय ? यह तभी सम्भव है जब विचार (यानी मन) इस तरह का कोई संस्कार न ग्रहण करे। अगर वह आये भी, तो स्वतः वापस फेंक दिया जाय।

पर ऐसा लम्बी यात्रा के बाद होता है। हमें मूर्त चीजों की पूजा से बचना चाहिए ताकि हम ऊपर उठें और "उसे" हस्तगत कर लें। ऐसे लोग हैं जिन्हें आत्मानुभव के लिए कुछ व्यावहारिक इशारा दिया जाय, फिर भी वह ठोस तरह की मूर्तिपूजा छोड़ेंगे नहीं। मेरे साथ के अभ्यासियों की कुछ मिसालें हैं जिनके सामने मैंने असली तरह से, पर महज थोड़ी देर के लिए, आत्म-साक्षात्कार की अवस्था प्रदर्शित की। उन्हें उसका एहसास हुआ और उसे सराहा भी बहुत, पर वे अपनी मूर्तियाँ छोड़ने को तैयार नहीं हैं क्योंकि वे उनके आदी हो गये हैं। और उनकी समझ बिलकुल मोटी हो गई है। उनकी विवेचन-शक्ति एकदम समाप्त हो गई है और यही हमारे अधःपतन का कारण है। जब विवेचन-शक्ति गायब हो जाती है, तो भय का आगमन होता है। वे मूर्तिपूजा इसलिए नहीं छोड़ते कि उनके पूर्वज बराबर उसे करते रहे हैं। यह एक कारण है। दूसरा यह है कि वे सोचते हैं कि यदि वे उसे छोड़ देंगे तो उनके ऊपर कोई विपत्ति आ जायेगी। यह हमारी दुःखभरी कहानी है।

❀ ❀ ❀ ❀

यह मेरा विचित्र अनुभव है कि आलस्य कैंसर पैदा करता है। अब मैं इस बिन्दु (निष्कर्ष) पर आ गया हूँ कि आलस्य निज के सामने समर्पण है। दूसरे शब्दों में आलसी आदमी निज के सामने आत्म-समर्पण कर देता है जो आध्यात्मिक विकास

के लिए आत्म-घातक है। आलसी तो मैं भी बहुत हूँ, पर यह महज घर-गृहस्थी के कामों में है।

❀ ❀ ❀ ❀

विलयन निःसन्देह होता है। पर ऐसी हालत में असलियत में डूब जाने के बाद आदमी दूसरी तरफ यानी दुनिया से भी जुड़ा हुआ महसूस करता है। मानव-जाति के लिए प्रकृति की यही योजना है क्योंकि इसके बिना मानव-जाति जीवित नहीं बच सकती। साथ ही साथ यह आवश्यक भी है क्योंकि मनुष्य के रूप में सर्वप्रथम हमें तब तक जीवित रहना है जब तक हम सदा के लिए आँखें न बन्द कर लें। यह प्रकृति का रहस्य है। मैंने अभी बताया है कि ये चिन्तायें केवल सतह पर रहती हैं। जब आदमी का खयाल उन पर जाता है, वे उग्र हो जाती हैं क्योंकि उनमें शक्ति आ जाती है। यदि ऐसा लगने लगे, तो मन से स्वाभाविक बल द्वारा वह विचार बाहर निकाल दीजिए।

❀ ❀ ❀ ❀

सहज मार्ग की अभ्यास-पद्धति बहुत ऊँचे स्तर की है। यह बिलकुल जड़ पर आघात करती है और केन्द्र से परिधि की ओर काम करती है। यह अपकेन्द्रीय प्रक्रिया है और गहरा और स्थाई प्रभाव पैदा करती है। इस तरह के भी गुरु हैं जो एक भिन्न क्रम को अपनाते हैं जिसमें वे स्थूल चेतना की केवल ऊपरी तहों को स्पर्श करते हैं—अभ्यासी की इन्द्रियों को अशक्त करने और इस तरह मूर्छा की अवस्था उत्पन्न करने के लिए।

इस तरह का उत्पन्न प्रभाव अभ्यासी को उस समय तो सुखद लगता है पर अन्ततः मन को कुण्ठित और बुद्धि को नष्ट करता है। सहजमार्ग-पद्धति के अन्तर्गत आप अभ्यासी की बुद्धि को अद्भुत रूप से बढ़ती हुई पायेंगे यहाँ तक कि वह दिव्य बुद्धि में रूपान्तरित हो जाती है। यदि कोई पर्याप्त रूप से संवेदनशील हो तो वह अपने अन्दर क्रमिक रूपान्तरण को अनुभव कर सकता है।

❀ ❀ ❀ ❀

"सृष्टि-काल में कण पहले से विद्यमान रहते हैं"—इसमें 'कण' शब्द पदार्थ के कण, इस सामान्य अर्थ में नहीं लिया गया है क्योंकि बाद की सृष्टि होने के कारण पदार्थ अपने रूप में उस समय विद्यमान नहीं था। जो उस समय था उसे 'ऊर्जा' कहना ज्यादा ठीक होगा; और यहाँ काम में लिया शब्द ऊर्जा के कणों की ओर इशारा करता है, जो बाद में क्षोभ यानी प्राथमिक हलचल की क्रिया से पदार्थ में परिणत हुये।

❀ ❀ ❀ ❀

"ब्रह्म के पास मन नहीं होता और असलियत जिस तरह विकसित हुई है उससे संपर्क में आने के लिए उसे मानव मन की जरूरत पड़ती है।" इस सिलसिले में मैं यह भी बता दूँ कि यदि ईश्वर (ब्रह्म) में मन होना मान लिया जाय तब मन का व्यापार भी वहाँ होता होगा। तब उन्हें भी अपने खुद के कामों

के प्रभाव के अधीन होना पड़ेगा। पर यह सब लोग मानते हैं कि 'वह' इस तरह के सारे प्रभावों से मुक्त है। इसका मतलब हुआ कि वहाँ मन के व्यापार नहीं होते। इसका अन्त में यही अर्थ है कि 'उसमें' मन नहीं होता। मैं समझता हूँ कि विचारों की यह उलझन ईश्वर विषयक अनेक धारणाओं के कारण होती है। पर इस धारणा के ईश्वर की मैं जब बात करता हूँ तब मेरा आशय सब चीजों से परे—मन की कौन कहे, शक्ति, क्रियाशीलता और चेतना से भी परे—अपनी परावस्था में स्थित ब्रह्म से है। अब जिस मानवीय मन के माध्यम से 'वह' क्रियाशील होता है, उसके पूरी तरह नकारात्मक होने से उसमें अपनी खुद की कोई कार्यवृत्ति नहीं होती और उसके माध्यम से जो भी कार्यान्वित होता है ईश्वरीय होता है। इस तरह वह ईश्वर के उपकरण का काम देता है।

❀ ❀ ❀ ❀

"पार्थिव कणों का ऊर्जा में रूपान्तरण हो सकता है।" यह मत इतना विवादग्रस्त नहीं है क्योंकि अति सूक्ष्म अवस्था में पदार्थ ऊर्जा में बदल जाता है। या दूसरे शब्दों में पदार्थ ऊर्जा की केवल अधिक स्थूल अवस्था है। यह एक वैज्ञानिक नियम है और जहाँ तक मैं समझता हूँ आधुनिक विज्ञान भी इसे स्वीकार करता है। यह हमारी प्राणाहुति पद्धति का बिलकुल प्रारंभिक आधार है। आपने स्वयं इसे बहुत सुन्दर

शब्दों में यों व्यक्त किया है : "प्राणाहुति पदार्थ को ऊर्जा में और ऊर्जा को मूल तत्त्व में बदलने का काम करती है।"

❀ ❀ ❀ ❀

'आनन्दमय', चरम अवस्था—जिसे शून्य कह कर बखाना गया है—न होकर एक कोश है । आनन्दमय कोश पाँच कोशों में से एक है। शास्त्रों के अनुसार भी ये कोश निःसन्देह प्रतिबंध हैं। स्पष्टतः प्रतिबन्ध रूप में आनन्दमय (कोश) चरमावस्था नहीं माना जा सकता जो वस्तुतः हर चीज के, परमानन्द तक के, परे है । इसकी मैं और अधिक चर्चा नहीं कर रहा हूँ क्योंकि आनन्दमय कोश के अनावृत्त होने के बाद आपके खुद के अनुभव इस बिन्दु पर काफी साक्ष्य देते हैं।

❀ ❀ ❀ ❀

"मनुष्य के रूप में भी सीधे केन्द्र के सम्पर्क में कोई रह सकता है बशर्ते कि यह भौतिक संरचना उच्चतम चेतना या खुद केन्द्र के द्वारा निर्मल कर दिया जाय।" मैं समझता हूँ कि अन्यत्र प्रकट किये गये मेरे विचारों को लेकर यह बात उभरती है। वहीं उच्चतम अवस्था प्राप्त करने की विधि भी बताई गयी है। निःसन्देह मेरे गुरुदेव के शिक्षण की विचित्र विशिष्टताओं में से यह एक है । इस परम उदात्त अवस्था को प्राप्त करने के लिए निस्सन्देह अत्यधिक पवित्रता आवश्यक है। पर इसके लिए सक्षमता ईश्वरीय वरदान है।

जहाँ तक इस पुस्तक में व्याख्यायित तत्त्व-मीमासा का सवाल है, मैं बता दूं कि चूंकि इस विषय को समझाने का मेरा कोई पक्का इरादा नहीं था, इसलिए इस किताब में उसका सिलसिलेवार विवेचन नहीं है। इसमें जो कुछ भी है वह व्याख्यायित प्रसंगों से सीधा संबन्ध रखने वाले बिखरे हुये हवालों के रूप में है।

❀ ❀ ❀ ❀

मैंने "राजयोग का दिव्य दर्शन" में अपने गुरुदेव की अद्भुत खोज—कि स्थूल शरीर रहते आदमी केन्द्रीय प्रदेश में पहुँच सकता है—के बारे में बताया है। जब कोई केन्द्रीय प्रदेश में पहुँच जाता है, तब एक बन्धन कायम रखा जाता है ताकि नीचे के प्रदेशों से भी उसका सम्बन्ध बना रहे। अगर यह बन्धन न कायम रखा जाय, तो आत्मा परम शान्ति में छलांग लगा लेगी और जीवन समाप्त हो जायेगा। इसलिए यह आवश्यक है कि बीच बीच में नीचे के प्रदेशों की हवा का स्पर्श मिलता रहे। संसार के सर्वोच्च संत की भी—यदि वह किसी तरह इस केन्द्रीय प्रदेश में पहुँच जाय—यही दशा होगी।

यह तो है कि नकारात्मकता की पराकाष्ठा में झटका बहुत हलके से महसूस होता है। हर मंजिल पर हमेशा प्रगति की गुंजाइश रहती है। जब हर चीज ठीक रहती है और

ईश्वरीय शक्ति से कोई आवेशित हो जाता है तो केन्द्रीय प्रदेश में तैरना शुरू हो जाता है—पर केवल प्रकाश के वृत्तों को पार करने के बाद। तैरना शुरू करने में बहुत उच्च शक्ति की की सहायता की जरूरत पड़ती है।

❀ ❀ ❀ ❀

मेरे गुरुदेव की महान शिक्षाओं के अनुसार, शरीर के प्रत्येक रोमकूप का अपना ऊर्जा-केन्द्र होता है और वह स्वयं एक महाद्वीप है। अपने ग्रह-संस्थान के सहित ब्रह्माण्ड में जो कुछ है सब वहाँ भी मिलता है। उन सब को अपनी पूर्ण जागृतावस्था में आना है। मैं दिल से प्रार्थना करता हूँ कि मेरे सारे साथी उस मंजिल तक पहुँचें और ईश्वर मुझे उनकी वैसी सेवा करने का अवसर दें। मेरे गुरुदेव के लिए, और केवल उन्हीं के लिए, यह क्षण भर का काम है। पर एक झलक में वैसी शक्ति को हस्तगत करने के लिए कौन तैयार है? मैं निरन्तर प्रयास कर रहा हूँ कि मेरे साथियों में इस ईश्वरीय शक्ति को धारण करने की क्षमता आ जाय। इसलिए हम धीरे धीरे आगे बढ़ने की प्रक्रिया का अनुसरण करते हैं।

❀ ❀ ❀ ❀

अपने खुद के लिए मैं कह सकता हूँ कि मुझे फ़ौज का कतई एहसास नहीं होता गो कि वह बराबर मौजूद रहता है। मैं उसे सिर्फ तब महसूस करता हूँ जब मैं किसी माकूल वजह से द्वैतता ग्रहण करता हूँ—और यह अधिकतर तब होता है जब

मुझे दिव्यता से कोई चीज उतरती हुई महसूस होती है। यह एक विचित्र अवस्था है जिसे बताने के लिए मेरे पास शब्द नहीं हैं।

❀ ❀ ❀ ❀

शक्ति के हटा लेने की अनुभूति नकारात्मकता से कुछ मिलती जुलती होती है। में शक्ति तक की कामना नहीं करता, मैं उसकी केवल अन्तिम अवस्था पाना चाहता हूँ। उस दशा में, शक्ति की जब जरूरत पड़ती है, वह हाजिर मिलती है।

स्वयं मैं इस मत का हूँ कि यदि सांसारिक जीवन के निर्वाह के लिए आवश्यक सभी चीजों से हमें वंचित कर दिया जाय, और उसकी जगह प्राप्त करने लायक आन्तरिक जीवन हमें प्रदान कर दिया जाय तो हम किसी तरह घाटे में नहीं रहते।

मैं समझता हूँ कि इस मार्ग में बाहरी परिस्थितियों को बदलने का सवाल ठीक नहीं बैठता। होना तो यह चाहिये कि ईश्वर की मरजी के सामने आत्मसमर्पण करने के अभ्यास की दृष्टि से अभ्यासी स्वयं अपने को परिस्थितियों के अनुरूप बना ले। ईश्वरीय इच्छा सर्वोपरि है, परिस्थितियाँ उसका परिणाम हैं। उन्हें ईश्वर के प्रसाद के रूप में ग्रहण करना हमें सीखना है। बेशक मैं मानता हूँ कि सामान्य जन के लिये यह आसान काम नहीं है, इसलिये प्राकृतिक प्रतिबंध उसे

बहुत दुःखदायी लगते हैं। पर परिस्थितियों को लेकर जो अक्सर हमारे बस के बाहर होती हैं, चिंता करने के बजाय अपने खुद के स्थूल स्वरूप को सुधारने के प्रयास में लगना ज्यादा अच्छा है।

मगर मुश्किल यह है कि जो आध्यात्मिक साधना के लिये (ऐसा कहते हुए) आते हैं, उनमें से अधिकांश सांसारिक उद्देश्यों से प्रेरित होते हैं और उनकी पूर्ति वे अपनी पसंद के अनुसार चाहते हैं। यदि वह उन्हें नहीं प्राप्त होती तो वे छोड़ कर चल देते हैं। और यदि हो भी जाती है तो वे जमे नहीं रहते क्योंकि उनका मतलब तो पूरा हो गया। इस तरह के कई मामले हुए हैं। आध्यात्मिक प्रशिक्षण के सम्बन्ध में मेरे गुरुदेव के तरीके सांसारिकता के स्पर्श से एकदम मुक्त हैं। मुझे पता है कि कुछ फ़कीर ऐसा प्रलोभन देते हैं और किसी हद तक वे अक्सर सफल भी होते हैं। पर यह निश्चित है कि ऐसा करने के लिये उन्हें सही रास्ते से हटकर चलना पड़ता है और अनाध्यात्मिक तरीके अपनाने पड़ते हैं जो मेरे लिए बहुत कड़वी गोली निगलने जैसा होगा। मैं अपने गुरुदेव द्वारा निर्धारित आदेश का कड़ाई के साथ पालन करता हूँ और किसी भी मूल्य पर अनाध्यात्मिक तरीके अपनाना नहीं चाहूँगा।

❀ ❀ ❀ ❀

निःसन्देह हर व्यक्ति को जो मेरे पास आता है उस समय जितना हो सके रूपान्तरित करने की मैं कोशिश करता हूँ क्योंकि यह मैं अपना फर्ज समझता हूँ। पर उस व्यक्ति का भी तो कोई फर्ज बनता है। प्राणाहुति को काम करने देना उस पर निर्भर करता है। जहाँ इसकी कमी होती है तो आदमी, कुछ समय बाद निश्चयतः बीच में से चला जायेगा, भले ही वह उस वक्त अभ्यास करने के लिये राजी हो जाय।

मेरी कठिनाइयाँ कई तरह की हैं। हर चीज मुझे अपने ऊपर लेनी पड़ती है जैसे चर्चा करना और कायल करना, अभिलाषा और स्थिरता पैदा करना, ढालना और रूपान्तरित करना और अन्त में अपने मार्ग पर दृढ़ रखना। इसमें मुझे कोई गुरेज नहीं बशर्ते कि दूसरे पक्ष से पूरा सहयोग प्राप्त हो रहा हो। पर यह बहुत अफसोस की बात है कि कुछ मामलों में सहयोग तक नहीं मिलता। जिसकी उन्हें चाह होती है वह सिर्फ बाहरी और दुनियावी है। हमारा मार्ग केवल मुक्ति और उससे आगे की प्राप्ति के लिये बना है और इस तरह नीचे दरजे के लक्ष्यों बहुत दूर है। उसी को मैं हर एक को अपने प्रथम सम्पर्क से ही प्रदान करता हूँ। यदि वह इसके लिए उत्कण्ठित है तो इसे पक कर मुकम्मिल होने में समय लगता है। जो मेरे पास बिना सच्ची उत्कण्ठा के आते हैं उनमें इतना

धैर्य नहीं रहता कि जड़ें गहरी जमने और धीरे-धीरे अपना परिणाम प्रदर्शित करने तक प्रतीक्षा कर सकें। मेरी समझ में नहीं आता कि ऐसे मामलों में मैं करूँ क्या सिवाय इसके कि मैं हर चीज उनके अंदर जबरदस्ती डालने के लिए अपने को तैयार कर लूं। पर यह खतरे से भरी प्रक्रिया हो सकती है।

❀ ❀ ❀ ❀

देश के इस भाग में एक संगठन है जो आध्यात्मिकता प्रदान करने का दावा करता है। इसके अनुयायियों की संख्या काफी बड़ी है और इसमें शामिल होने वाले लोग इसे शायद ही छोड़ते हैं, यद्यपि मेरी जानकारी के अनुसार कुछ लोग इससे बहुत विरक्त और विमुख हैं। मैं देखता हूँ कि वे अभ्यासियों को अपने से बँधे रखने के लिए न केवल फुसलाने और प्रलोभनों को बल्कि भय और धमकी जैसे अनाध्यात्मिक उपायों को, काम में लेते हैं। और जब मैं उनकी आन्तरिक दशा का निरीक्षण करता हूँ तो मैं उनमें से किसी में भी आध्यात्मिक उपलब्धि नहीं पाता। वे तो किसी पार्थिव शक्ति के वशीभूत हैं। उनमें से आपको मुश्किल से एक भी मिलेगा जो किसी तरह लक्ष्य के अधिक निकट पहुँचा हो। इसके विपरीत आप यह देख कर प्रसन्न होंगे कि हमारी संस्था में प्रशिक्षकों में से किसी की भी प्राणाहुति में माया का लेश मात्र नहीं रहता। उससे अभ्यासी की ओर केवल विशुद्ध धारा प्रवाहित होती है। मेरी राय में धार्मिकता और सदाचारिता का चारों ओर प्रसार करने के

लिए, किसी भी कीमत पर ऐसी विधियों को अपनाया जाना चाहिये। मैं संसार के प्रबोधन के लिए काम करने हेतु ऐसे श्रेष्ठ व्यक्तियों की सृष्टि के लिए ईश्वर से प्रार्थना करता हूँ। समय बीतने पर ही इसके परिणाम देखने में आयेंगे। भावी संसार के लिये जो उपयोगी हों ऐसी सुयोग्य आत्माओं को तैयार करने के लिये हमें पूरा दिल लगा कर कोशिश करनी चाहिये। यदि कुछ थोड़े लोग हमसे छिटक कर अलग हो भी जाते हैं तो कोई फर्क नहीं पड़ता, क्योंकि अपने थोड़े दिनों के संपर्क से उन्हें जो हासिल हुआ है वह इस जन्म में नहीं तो अगले में फलेगा। इस तरह हमारी मेहनत कभी व्यर्थ या नष्ट नहीं होती।

❀ ❀ ❀ ❀

बहुत ऊँचे दरजे का संत भी मानव वृत्ति को उतार कर फेंक नहीं सकता क्योंकि उस दशा में जीवन लुप्त हो जायेगा। यह प्रतिबन्ध सदा रहेगा और अपना कोई न कोई प्रभाव दिखाता रहेगा। प्रकृति का यही रहस्य है।

❀ ❀ ❀ ❀

मैं अपनी अदना समझ के हिसाब से "आदित्यवर्णं तमसः परस्तात्" का अर्थ बताता हूँ। भगवद्गीता के आठवें अध्याय के नवें श्लोक में भगवान् ने परमसत्य के प्रकाशमान स्वरूप का, जो सारी उपासना का लक्ष्य है, वर्णन किया है। यही सारी शुरूआत का बिन्दु भी है जैसा कि आदित्यवर्णम् में आदि शब्द बताता

है। पर इसके परे असलियत का एक और विशुद्ध प्रदेश है, जिसका वर्णन भगवान ने इसी अध्याय के बीसवें और इक्कीसवें श्लोक में किया है। यह सारी शुरूआत के परे का प्रदेश है जहाँ साधारण समझ के अर्थ में उपासना का भी अन्त हो जाता है। चूंकि ऐसे लोगों के सामने, जिन्होंने स्वाभाविक ढंग से उस दशा का स्वाद नहीं पाया है, उपासना के अन्त की बात करना खतरनाक हो सकता है, इसलिये उनसे 'आदित्यवर्णम्' को लाभकर ढंग पर 'अन्तिम दशा' कह कर बताया जा सकता है।

❀ ❀ ❀ ❀

जो कुछ भी देखा, सुना या कल्पना किया जा सकता है उस सबसे परे "वह" है। "उसके" पास, उसके द्वारा रचित चमक-दमक और शब्द को पार करके जाया जा सकता है।

❀ ❀ ❀ ❀

आपने अन्न शब्द की अन् (साँस लेना) धातु से व्युत्पत्ति का प्रयत्न करके बहुत महीन बात कही है।

प्रतीकों पर बहुत बल देने और भाषा में फँसे रहने के कारण वैयाकरण कभी कभी प्रकृति और असलियत के विकास की दृष्टि से शब्दों का असली मतलब समझने में असफल रहे हैं।

मैंने तीस मार्च की रात में एक विचित्र स्वप्न देखा। जितना मुझे याद है, मैं आपको बता रहा हूँ। इससे अन्न का आप वाला

अर्थ समझ में आ सकता है। किसी तरह कटार से मेरी गरदन में घाव लगा और मैं मर गया। मैं नदी में बहा दिया गया। दिल में कोई धड़कन या साँस नहीं थी, पर जो कुछ घटित हुआ था उसका मुझे पता था। एक आदमी, जिसे पता था कि किसी ने मेरी हत्या कर दी है, पुलिस में रिपोर्ट करना चाहता था। इसलिए उसने पूरी तरह से मेरी जाँच की। उसने नब्ज टटोली जो रुक गई थी और उसने यह भी देखा कि दिल का धड़कना बन्द हो गया है। पर मुझे इस सब का पता था यद्यपि साँस नहीं आ जा रही थी। तब प्राण फिर से धीमे धीमे आने लगा, नब्ज का चलना शुरू हो गया और दिल भी अपना काम फिर करने लगा। इसके बाद मैं नींद से जगा और इस पर गौर करने लगा। मैं इस निष्कर्ष पर पहुँचा कि यद्यपि साँस और दूसरी चीजें नहीं थीं और शरीर मृत पड़ा हुआ था, फिर भी चेतना शेष थी। इससे यह पता लगता है कि जीवन का मूल कारण चेतना है। मैं समझता हूँ कि साँस का रहस्य समझाने के लिए मुझे यह दृश्य दिखाया गया था।

❀ ❀ ❀ ❀

परम तत्त्व की अनुभूति का तब प्रारम्भ होता है जब और सब अनुभूतियाँ समाप्त हो जाती हैं। मनुष्य के लिए जितनी सम्भव है उतनी ब्रह्म में लय अवस्था, जिन्होंने प्राप्त की है वे उसमें कभी पूरी गहराई के साथ और कभी कुछ उथलाई पर, लीन रहते हैं। जो मनुष्य ब्रह्म में सारे समय पूरी तरह

डूबा रहता है, कोई भी काम कर सकता है पर लगता वह प्रतिमा की तरह है।

❀ ❀ ❀ ❀

चेतना की पूर्णावस्था में दैवी गुणों का विकास होता है। यदि उसका किसी और चीज से सरोकार रहता है तब वह पूर्ण साक्षात्कार के मुकाम पर नहीं है। उसमें भूतकाल की कुछ भी स्मृति न रहने का बोध रहता है और थोड़ी सी गढ़न उसे अमूर्त को जानने लायक बना देगी। चाहे कोई साक्षात्कार के शीर्ष-बिन्दु पर हो, उसमें मानव तत्त्व रहता ही है।

❀ ❀ ❀ ❀

निस्सन्देह, परिवर्तनशून्य दशा में भी मनुष्य सांसारिक वातावरण से विचलित होता है। यह इस कारण होता है कि बहुत हलके रूप में ही सही पर मानवता के बन्धन का बने रहना अनिवार्य है और यही मनुष्य को अनन्तता में पूरी छलाँग लगाने से रोकता है। एक बात है जो ऊँची योग्यता वाले आदमियों में होती है। जब उसके अन्दर कोई विचार आता है, तो वह उस पर पूरा बल लगा कर चिन्तन करने लगता है जिसका परिणाम यह होता है कि उसकी तीव्रता बढ़ जाती है। वास्तव में, हमें अपने विचार का उसी सीमा तक प्रयोग करना चाहिए जितने की काम के लिए जरूरत हो। व्याकुलता इसलिए मन में घुस पड़ती है कि परिवार का बोझ हमारे कन्धों पर है। पर

जब कभी हमें लगे कि व्याकुलता सीमा के बाहर हो गई है, तभी हमें उसे त्याग देना चाहिए।

❀ ❀ ❀ ❀

भारतवर्ष और संसार की बेहतरी की पूरी उम्मीद है। संसार में परिवर्तन लाने का काम करने वाले विशिष्ट व्यक्ति ने करीब करीब अपना काम पूरा कर लिया है। भौतिक रूप में वह धरती पर बहुत धीरे धीरे आ रहा है क्योंकि यदि यह पूरे जोर के साथ लाया जाय तो विशिष्ट व्यक्ति को तुरन्त विदा होना पड़ेगा क्योंकि उनका काम पूरा हो चुका होगा।

जहाँ तक संसार के कष्टों की बात है, पार्थिव रूप में कोई भी व्यक्ति उनसे मुक्त नहीं है। हमारे अवतार भी कष्टों से मुक्त नहीं थे। जन्म से मृत्यु तक जो दुःख हमें मिलते हैं, हमें उनका अन्त करना चाहिए। यदि दुःख में ग्रस्त लोगों से हम अपनी तुलना करें तो हम देखेंगे कि हमारी कसक उनसे कहीं कम हैं क्योंकि हमारे अंदर किसी ऐसे तत्त्व का राज्य है जो कष्ट को गम्भीरता नहीं धारण करने देता।

❀ ❀ ❀ ❀

क्षमतासम्पन्न प्रशिक्षक तक ध्यान के समय विचारों के अतिक्रमण की शिकायत करता है। उसके बारे में मैं आग्रह-पूर्वक कहूँगा कि, जैसा मेरे गुरुदेव ने अपने एक लेख में लिखा हैं; कि प्राणाहुति के समय गुरु का सूक्ष्म शरीर जानकर या अनजाने अभ्यासी के शरीर में प्रवेश करता है और इससे

अभ्यासी के अन्दर उठने वाले तरंगमय विचार उसके अन्दर आ जाते हैं। यह अवश्य है कि उन्हें भेजा इस तरह जाता है कि प्रशिक्षक उन्हें अपना ही मानता है। खुशी की बात है कि आपके हिस्से में बहुत अच्छे अभ्यासी हैं, इसलिए बुरे और कुत्सित विचारों के आक्रमण आप पर होने की संभावना नहीं है। दुर्भाग्यवश मुझे थोड़े से ऐसे लोग मिले जिनके सम्पर्क से मुझमें कुत्सित भावना आई—जब मैं उनको प्राणाहुति देने लगा। तब मैने उनको मिशन के सदस्य स्वीकार करने से इनकार कर दिया। एक और व्यक्ति था जिसके विषय में मैने देखा कि जब मैं उसको प्राणाहुति देने लगा तो नंगी औरतों की छवि मेरे सामने प्रकट होने लगी क्योंकि वह पूरा व्यभिचारी था। इसलिए मैने उसे मिशन में नहीं लिया। मेरे गुरुदेव के भी, दो मामलों में, ऐसी ही बातें देखने में आई थीं। यदि क्षमतासंपन्न प्रशिक्षक अपने अन्दर उठनेवाले ऐसे विचारों को कम करना चाहता है तो वह अभ्यासी के वैयक्तिक मन को प्राणाहुति के समय इस तरह की क्रियाशीलता को रोक देने का सुझाव दे सकता है और इससे सहायता मिलेगी। पर इस प्रक्रिया का अक्सर सहारा नहीं लेना चाहिए क्योंकि प्रशिक्षकों को अभ्यासियों के बारे में वैयक्तिक मन की सहायता से बहुत बातें मालूम होती हैं।

❀ ❀ ❀ ❀

कभी कभी अभ्यासी को बहुत ऊँची अवस्थाओं का अनुभव होता है क्योंकि गुरु के माध्यम से अनुग्रह ऊपर से आता है। यह भी होता है कि अनजाने भी गुरु बहुत ऊँची अवस्था से प्राणाहुति देता है और संवेदनशील अभ्यासी को उसके प्रभाव का पता चल जाता है।

❀ ❀ ❀ ❀

प्यारे भाई, मैं सच सच कह रहा हूँ कि अभ्यास काल में मुझे इतनी जलन होती थी कि मेरी सारी छाती में जलने के दाग पड़े हैं। पर वे अब फूलों की क्यारियाँ और अग्नि-पुष्प हो गये हैं। मैंने शान्ति को सस्ते में बेचकर अध्यात्म का क्षेत्र पार किया है यानी उसे पाने के लिए शान्ति की बलि दी है। और ईश्वर जानता है कितने बरजक (बीच रास्ते के पड़ाव) पड़ते हैं जब आगे बढ़ते जाने के लिए बीच बीच में रुकना पड़ता है। बरजकों (मध्यवर्ती अवस्थाओं) के बारे में मैंने एक पत्र भी लिखा है जिसका आपको अध्ययन करना चाहिए। उसकी इबारत इस समय मुझे बहुत याद नहीं है। और प्यारे भाई, जब किसी को यह अनुभव हो जाता है कि किसी विशिष्ट व्यक्ति से वास्तविक आध्यात्मिक लाभ मिल सकता है, तब उसे अपने को उसके हवाले कर देना चाहिए। यहाँ, चूंकि हमें इसी जन्म में मुक्ति प्राप्त करना है तो हमें सारे संस्कारों का क्षय करना है—कुछ को भोग करके और बाकी

को भून कर। श्री क पर एक सिलसिला चालू हो गया था जिसका मुझे पता था, पर इसके अतिरिक्त और कारण भी थे जिन्हें मैं उनसे पूछना चाहता था ताकि उन्हें भी अनुभव हो सके। उन्हें सन्तुष्ट करने के लिए, थोड़ा जल्दी हो, मुझे गुरुदेव से प्रार्थना करके उनकी सफ़ाई करनी पड़ी। अन्यथा, उनकी बेहतरी के लिए उन कारणों को मैं बने रहने देना चाहता था। अब जो भी हो, कृपया प्रार्थना करते रहिए कि भविष्य में इस तरह की कोई चीज अन्दर न बसेरा कर ले।

(शरीर-) तंत्र को साफ करने में मुझे कई महीने लगते हैं। यही कारण है कि श्री क को कुछ अधिक अनुभव नहीं हुआ। 'मानव' के निर्माण के लिए यह निर्मलीकरण बहुत आवश्यक है। मेरा ध्यान सदा इस तरफ जाता है और यही वास्तव में श्रद्धेय लालाजी का भी आदेश है। श्री ख प्रकृति से अधिक साफ़ थे, इसलिए उन्हें बहुत शीघ्र लाभ का अनुभव हुआ।

❀ ❀ ❀ ❀

प्यारे भाई, मैं नहीं समझता कि विशिष्ट व्यक्ति धर्मपरायणता के मार्ग पर हर किसी को ले आने जैसा हर काम कर सकता है। भगवान श्रीकृष्ण तक दुर्योधन का दिमाग ठीक नहीं कर सके और इस तरह के बहुत लोग थे। और अन्त में उन्हें महाभारत का युद्ध घटित करना पड़ा। अभी भी यह

संभव है कि युद्ध और रक्तपात इस सीमा तक बढ़ जायें कि संसार का एक बड़ा भाग आबादी से रहित हो जाय। केवल वे ही लोग जो भगवान कृष्ण के भक्त थे उनसे कुछ लाभ हासिल कर सके। इसलिए श्री क का यह कथन कि विशिष्ट व्यक्ति स्वयं लोगों को अध्यात्म की ओर उन्मुख कर देगा, सही नहीं हो सकता। आपका सुझाव कि हम विशिष्ट व्यक्ति द्वारा लाभान्वित हो सकते है बहुत उपयुक्त है।

❀ ❀ ❀ ❀

यह सामान्य नियम है कि इच्छापूर्वक बल लगाये बिना प्रकाश का प्रवाह स्वतः आरम्भ होना चाहिए। और जब लोगों को स्वयं यह जाने बिना किसी व्यक्ति से आध्यात्मिक लाभ मिलने लगता है तो वह प्रशिक्षक बनाये जाने की योग्यता रखता है।

❀ ❀ ❀ ❀

ध्यान के समय आपको स्वयं सांस रोकने की जरूरत नहीं है। यदि वह स्वयं रुक जाती है तो यह ठीक और अच्छा है। जब उड़ान बहुत ऊँची जाती है, तब यह अक्सर होता है कि घंटों तक सांस नहीं आती और जब विचारशून्यता उत्पन्न होती है तब सांस धीमी हो जाती है।

❀ ❀ ❀ ❀

इच्छा उसे कहते हैं जिसकी पूर्ति से दिल को सुख मिलता है और जिसकी पूर्ति न होना दुःख, दुर्गति और पीड़ा लाती है।

उसका भोग करने वाले भी आप ही हैं और उसके कर्त्ता भी आप अकेले ही हैं । उद्देश्य के साथ किसी लगाव के बिना, आदेश का पालन ही कर्तव्य है । महमूद गज़नवी के पास अयाज़ नाम का एक गुलाम था जिसे वह बहुत चाहता था । बादशाह के इस बरताव से दूसरे दरबारी खुश नहीं थे । किसी ने बादशाह से पूछा, "आप अयाज़ को इतना ज्यादा क्यों चाहते हैं ?" कुछ समय बाद बादशाह ने हर दरबारी से हीरों के एक बहुत कीमती फानूस को, जिसे वह भारत से लाया था और जो सभा-भवन की छत से लटका हुआ था, तोड़ कर टुकड़े टुकड़े करने को कहा । पर दरबारियों में से किसी ने उसे छुआ तक नहीं । तब बादशाह ने अयाज़ को बुलवाया और उसे हीरों के फानूस को तोड़ डालने का हुक्म दिया । अयाज़ ने आज्ञा का तुरन्त पालन किया और उसके टुकड़े टुकड़े कर डाले । बादशाह ने दरबारियों से कहा, "सिर्फ इसी वजह से मैं अयाज़ को चाहता हूँ । उसने मेरा हुक्म पूरा करना अपना फ़र्ज समझा और नफे नुकसान की फ़िक्र कतई न की ।" इसलिए कर्तव्य को इच्छा नहीं कहा जा सकता ।

❀ ❀ ❀ ❀

तर्क के माध्यम से असलियत तक पहुँचना असंभव है । असलियत तो एक अन्तःप्रेरणा की (वजदानी) चीज है । यह बिलकुल सही है और अधिकतर सूफ़ी (मुस्लिम रहस्यवादी) वजदानी हालत को ही असलियत की हालत मानते हैं । लेकिन

हमारे विचारक इससे भी आगे गये हैं। वजदान फिर भी पदार्थ से संयुक्त होता है और अहं भाव उसमें छिपा रहता है। इसके परे जो दशा होती है उसे असलियत की दशा कहा जा सकता है। तर्क वहाँ नहीं पहुँच सकता। जब व्यष्टि मन से वैयक्तिकता निकल जाती है तो सिर्फ मन बचता है जो केवल एक होता है और तब इसे ईश्वरीय मन कह सकते हैं। केवल वही अकेला स्व की असली दशा नजर के सामने ला सकता है। तर्क की पहुँच उस सीमा तक है जहाँ तक आप दूसरी चीज को किसी अभिप्राय-विशेष से देखते हैं।

❀ ❀ ❀ ❀

यह मेरी हार्दिक इच्छा है कि मेरे सत्संगियों की मुझसे अधिक उन्नति हो। पर यह सब उनके प्रेम, परिश्रम और ईश्वर के अनुग्रह पर निर्भर करता है। जब प्रेम और परिश्रम रहते हैं तब साँकल बजने लगती है और उसकी आवाज जरूर मालिक तक पहुँचती है।

❀ ❀ ❀ ❀

प्रतीक्षा भी एक प्रकार का तीव्र स्मरण है जो अध्यात्म के लिए बहुत लाभकारी है। एक शायर ने लिखा भी है कि यार की इन्तजारी में जो मजा है वह मिलने में नहीं।

❀ ❀ ❀ ❀

कट्टरपन को मैं ठीक एक दीवार की तरह मानता हूँ जिसे कोई अपने आगे खड़ी कर लेता है और जिससे रास्ता बन्द हो

जाता है। यह चीज किसी तरह आ जाती है। और हमारे अन्दर यह दोष मुसलमानों को लगातार देखते रहने से आया, नहीं तो हमारे यहाँ नदी जैसा प्रवाह था कि एक कण तक ठहरा नहीं रह सकता था।

❀ ❀ ❀ ❀

यह असंभव है कि ये चीजें दिमाग पर किसी समय छाप न छोड़ें। नमक की खान के अन्दर जो कुछ भी जाता है, नमक हो जाता है। हमारे देश के कुछ भागों में आपकी मुलाकात बुद्धिजीवी वर्ग से होगी। उन्हें अपनी ही भावनायें प्यारी हैं।

❀ ❀ ❀ ❀

यदि मैं अन्तिम अवस्था का वर्णन करने लगूं तो वैज्ञानिक संभवतः मुझ पर झपट पड़ेंगे। अन्तिम सीमा को बताना बहुत कठिन है पर फिर भी मैं इतना तो लिखूंगा। जब अभ्यासी अपने स्वयं को और ईश्वर को भी भूल जाता है तब यह माना जा सकता है कि वह फिर इस संसार में किसी रूप में नहीं आयेगा। ऐसी दशा में वह ऐसे महासागर में डूबा रहेगा कि उसके लिए "उसको" छोड़ कर और कुछ नहीं रहेगा। इसके पहले, दूसरी दुनिया के लिए वह अपनी दुनिया को बेच बाच चुका होगा। अब यदि वह दूसरी दुनिया को भी बेच डाले तो सिर्फ असलियत बचेगी।

❀ ❀ ❀ ❀

प्रिया प्रेमी को घुटनों के बल, जैसे चाहे, चलने को बाध्य कर सकती है। घुटनों के बल चलने में भी प्रिया प्रेमी को कुछ शिक्षा देती है। और घुटनों के बल चलने की भावना भी प्रेमी प्रिया से ही ग्रहण करता है। इसलिए जो भी चाल मैं चलता हूँ, यदि वह ठीक है, तो इसमें आपकी ही प्रशंसा है और यदि वह गलत है तो इसमें आपका स्वयं को धोखा देना शामिल है। अब यदि इस पर व्यापक दृष्टि से विचार करें तो आप समझ जायेंगे कि हमें इस प्रकार घुटनों के बल चलना केवल "उन्हीं से" प्राप्त हुआ है जिनकी स्मृति भक्त को अतीव बेचैनी से उत्तेजित कर देती है।

❀ ❀ ❀ ❀

सृष्टि काल में हर चीज एकदम नयी तुली अवस्था में नहीं उपलब्ध थी। इसलिए हर चीज अपनी वास्तविक प्रतिफलित अवस्था में प्रकट थी। नदी सामने मौजूद थी और किसी भी चीज—एक कण तक—का आवरण नहीं बना था जो निगाह के लिए रुकावट पैदा करता।

❀ ❀ ❀ ❀

सतत स्मरण पहले तो वही है जो आप कर रहे हैं। दूसरे जब दिमाग थक जाता है तब "उनकी" स्मृति वही प्रभाव उत्पन्न करेगी। लक्ष्य मोक्ष है। आपने लिखा है कि आन्तरिक दशा एक सी नहीं रहती बल्कि कभी बहुत सूक्ष्म और हलकी

होती है और कभी इसके विपरीत। ऐसा होता ही रहता है। यदि हलकापन और भारीपन, जो परस्पर-विरोधी अवस्थायें हैं, नजर में न आयें तो परिवर्तन-शून्य दशा, जो बहुत सूक्ष्म अवस्था है, पहचान में नहीं आयेगी। इसके अतिरिक्त, जहाँ अभी हमारा सूक्ष्म निवास है वहाँ से हम अगले बिन्दु की ओर बढ़ते हैं तो भारीपन का अनुभव होता है। उसका तब तक अनुभव होता रहता है जब तक वह सूक्ष्म अवस्था भारीपन के प्रभाव को दूर करके, स्थिर नहीं हो जाती। और यही क्रम चलता रहता है जब तक हम ऐसी अवस्था तक नहीं पहुँचते जिसके परे कोई भी बिन्दु नहीं है। इसलिए अब आप यह समझ चुके होंगे कि ये सारी चीजें आपकी उन्नति की अवस्था को प्रदर्शित कर रही हैं।

❀ ❀ ❀ ❀

आपने लिखा है, "कृपा करके मुझे वह चीज दीजिये जो मेरे लिये आप बहुत आवश्यक समझते हैं।" और उसके आगे "मैं आशा करता हूँ कि आप उसे अवश्य देंगे।" इसका सांसारिक उत्तर तो यह है कि जब मैं आपका हूँ तो मेरे पास जो कुछ भी है वह सब पहले से ही आपका है। और मेरी हार्दिक इच्छा अपने को बेच डालने की है। पर कोई ग्राहक आगे नहीं आ रहा है। यह इस कारण से है कि मैंने अपना कोई दाम नहीं नियत किया है। और ऐसा जमाना आ गया है कि मुझे कोई मुफ्त तक नहीं लेना चाहता है। और एक तरह यह भी ठीक

ही है। मुट्ठी भर हड्डियों के ढाँचे का कोई करेगा भी क्या ? "नानक बूढ़े बैल को कौन बाँध भुस दे ?" इसलिए प्यारे भाई मुझको खरीदने के लिए अपने को तैयार कर लो, जिससे आवाज़ लगाते हुए मुझे घर-घर की फेरी न देनी पड़े।

और प्यारे भाई, अच्छे स्वास्थ्य और धन के लिए किसी सीमा तक हर आदमी के अन्दर कामना रहती है। यह सन्देह से परे एक तथ्य है। पर आपके अन्दर कामना उसकी है जो केवल आपका है और आपके पास है और इसीलिए आप उसके लिए अधिक व्याकुल हैं।

❀ ❀ ❀ ❀

यह सम्भव है कि ज़ीरो (शून्य) का अर्थ मैं उतनी अच्छी तरह से न समझता होऊँ जैसे दूसरे लोग समझते हैं क्योंकि एक ज़ीरो दूसरे ज़ीरो की दशा को, और मृत व्यक्ति शव की दशा को, नहीं समझ सकते। एक तरह से, ऐसी दशा को आप वह दशा कह सकते हैं जहाँ जो कुछ भी द्वैतता के भाव हैं सब के सब समाप्त हो जाते हैं और हम जीवित शव मात्र रह जाते हैं। या हम असलियत में इस तरह घुल जाते हैं कि सारी भेद-बुद्धि लुप्त हो जाती है और असली और नकली के फर्क का पता नहीं चलता।

❀ ❀ ❀ ❀

आपने मुझसे पूछा है कि आस्था कैसे बढ़े। यदि प्रशिक्षक पर कुछ विश्वास किया जाय और उसके कारण कुछ लाभ का

अनुभव होने लगे, तो इससे सच्चे जिज्ञासु के हृदय में आस्था बढ़ने लगेगी।

आपने एक बहुत पेचीदा सवाल पूछा है, "बुद्धि और भावना कब एक हो जाते हैं ?" इसके लिए छोटा सा जवाब होगा, "लैला और मजनू दोनो एक ही जगह रहते हैं (लैला व मजनू एक ही मोहमिल में रहते हैं)।"

आप उनके संयोग को शरीर और आत्मा के या मन और बुद्धि के संयोग जैसा समझिए। दोनो ही प्रायः अनिवार्यतः सहवर्ती हैं। आगे चल कर बुद्धि एक भिन्न रूप धारण कर लेती है जिसे ईश्वरीय समझ कहते हैं। और जब ऐसा होता है तो भावना का रूप भी बदल जाता है यानी भावना भी उसके समनुरूप होने लगती है। एक दिखाने वाली हो जायेगी, दूसरी सूचना देने वाली। मैं एक बात और कहूँगा : अनुभूति आत्मा से बहुत निकटता से जुड़ी होती है और बुद्धि अनुभूति के बहुत निकट होती है। दूसरे शब्दों में अनुभूति आत्मा के अधिक निकट है और बुद्धि अनुभूति के। कुछ भी, कहीं नहा जाता; केवल उसका समुचित उपयोग होना प्रारम्भ हो जाता है। आपके सतत स्मरण का सम्बन्ध बुद्धि से नहीं, हृदय से है। कृपया विद्वानों से बुद्धि और भावना के विषय में पूछताछ करिये, वे अच्छा उत्तर देंगे। मेरा उत्तर तो बेपढ़े लिखे का है। सतत

स्मरण, अनुभव नहीं किया जाता पर किया जाता है, और आप इसकी विधि पहले से ही जानते हैं।

❀ ❀ ❀ ❀

सच तो यह है कि हर आदमी को तीन तरह के ऋण चुकाने पड़ते हैं। आप तो इन ऋणों को चुका रहे हैं। भाई, मैं ऋषि-ऋण की जगह गुरु-ऋण रखना चाहूँगा। मैं इस ऋण को चुकाना चाहता हूँ और यह तभी सम्भव होगा जब मैं एक आदमी को उसी तरह तैयार कर सकूँ जैसे मेरे गुरुदेव ने मुझे किया। पर इसकी बेबाकी भी केवल मेरे गुरुदेव के हाथ में है।

❀ ❀ ❀ ❀

इस सांसारिक जीवन में हर किसी को आघात मिलते ही हैं और यह आपके विषय में आपके वेतन को लेकर हुआ है। यदि आप इसे प्रियतम से मिले उपहार के रूप में नहीं ग्रहण कर सकते तो इसे शैतान से मिला मानिये और तब आप में कुछ साहस आयेगा। ईश्वर के अनुग्रह से भारीपन दूर हो जायेगा और शायद यह दूर हो भी गया है।

❀ ❀ ❀ ❀

इसलामी मान्यता के अनुसार हम आदम की संतान हैं, जो निषिद्ध फल खा लेने के कारण धरती पर फेंक दिये गये थे। स्वभावतः वही बात हम सब के अन्दर आ जानी चाहिए। पर भाई, इस घटना को हुए करोड़ों साल बीत गये। अब उसका

प्रभाव आपके रक्त में कैसे बचा रह सकता है ? खून में घुसने के बाद वह प्रभाव समाप्त हो गया। निःसन्देह उनकी बीबी हव्वा ने हमारा पीछा करना नहीं छोड़ा है। न जाने कितनी पीढ़ियों से वह अपने को प्रकट करती रही है। यही हव्वा हमें हमारे स्वदेश से स्वर्ग में लाई और हम उसी की जूतियों की ठोकर खा कर धरती पर आये। भाई, कितना अधःपतन हुआ ! अब यदि हम इस हव्वा के पीछे भागना बंद कर दें तो हमें खोया हुआ स्वर्ग वापस मिल जायेगा। यह विचार कि आप आदम हैं छोड़ कर तो देखिये। अरे आप अपने उसी मूल निवास-स्थान पर जहाँ से आप आये हैं, पहुँच जायेंगे। आदम और हव्वा की कथा के अनुरूप हमारी हिन्दू पौराणिक कथाओं में मनु और शतरूपा की कथा है। आप भूल भर जाइये कि आप आदम हैं और हव्वा के चक्कर से आपको छुड़ाना मेरा उत्तर-दायित्व हो जायेगा। अस्तु, आप इस समय आदम के विचार से मुक्त होने के लिए स्वरूप का ध्यान कर रहे हैं। गालिब ने लिखा है।—

न था कुछ तो खुदा था, कुछ न होता तो खुदा होता।
मिटाया मुझको होने ने, न होता मैं तो क्या होता।।

❀ ❀ ❀ ❀

प्यार में झिड़कियाँ भी सही जाती हैं पर प्यारे भाई उन झिड़कियों में एक अजीब मिठास होती है। और वे

झिड़कियाँ सिर्फ प्यार के नशे में ही मिल सकती हैं। ऐसा व्यक्ति कभी हलके और नीचे चरित्र का नहीं हो सकता। मैं सूरदास के एक प्रसिद्ध भजन का हवाला दूँगा जो उन्होंने कृष्ण के प्रेम में लिखा है :—

"बाँह छुड़ाये जात हो, निबल जान कै मोहि।
हिरदै ते जब जाओगे, तब जानोगो तोहि॥"

उन्होंने यह तब कहा था जब वे अन्धे होने के कारण कुँये में गिर पड़े थे और कृष्ण महाराज ने उन्हें बाहर निकाल दिया था। तब उन्होंने कृष्ण का हाथ कस कर पकड़ लिया था और कहा था कि अब मैं तुम्हें जाने न दूँगा। पर कृष्ण तो बाँह छुड़ा कर भाग गये।

गलती सबसे होती है और गलती करना इन्सान की फितरत है। और प्यारे भाई मेरे गुरुदेव ने मुझसे कहा था, "मैं और लोगों की सारी गलतियाँ माफ कर दूँगा पर तुम्हारी एक भी नहीं।" मैं निस्सन्देह इसलिए प्रसन्न हुआ कि यह विशेष व्यवहार उनके विशेष प्रेम के कारण है। एक कहानी है :

मजनूँ ने अपनी प्रियतमा लैला से वियोग के कारण अपने बदन में राख पोत ली और भीख माँगना शुरू कर दिया। लैला हर वृहस्पतिवार को गरीबों को रोटी बाँटती थी। उसका असली मकसद तो यह था कि अपने भिक्षापात्र को लिये

हुए मजनूँ भी मेरे पास आये। लैला ने उसे भीख देने के बजाय उसका बरतन ही तोड़ डाला। और इस व्यवहार से मजनूँ पर नशा चढ़ गया और आनन्दातिरेक से भरकर वह नाचने लगा। लोगों ने उससे पूछा, "दोस्त, कितने बेवकूफ हो तुम। अन्य सबको वह रोटी देती है मगर तुम्हारा कटोरा तोड़ देती है और तुम हो जो प्यार के पागलपन में नाच रहे हो।" उसने जवाब दिया, "यह बरताव सिर्फ मेरे लिए है और यही उसके प्रेम की विशेषता है।"

❀ ❀ ❀ ❀

आपको यह धारणा, कि इस बार आपको अधिक लाभ नहीं मिल सका, बताती है कि अध्यात्म के लिए आपकी प्यास बहुत बढ़ गयी है। जब आप किसी भी तरह स्वरूप का ध्यान न कर सकें, तो आप सिर्फ यह मान लीजिए कि स्वरूप आपके सामने है। जब यह भी न किया जा सके तो ध्यान की दिशा अपने आप प्रकाशित होगी।

❀ ❀ ❀ ❀

दरवेश के लिए बराबर चलते फिरते रहना बेहतर है। आपके पास जमकर रहने के लिए कोई मुकाम नहीं है। आपका आखिरी पड़ाव तो सिर्फ "वही" है, और वहाँ आपके पहुँचने के पहले आनन्द भी बिदाई ले लेता है। और वहाँ कैसी दशा होती होगी? यदि उसे 'अज्ञान' कहा जाय, तो वह भी तो बिदा हो जायेगा। एक शब्द है जो अवश्य उस पर प्रकाश डालता है

और वह है पूर्ण अज्ञानता। मैंने उसे परिवर्तन-शून्य दशा का नाम दिया है। वस्तुतः यही असली परदा है। आध्यात्मिकता तो खैर छूट ही जाती है। यही सारे परिश्रम और प्रयास का सार है। इसलिए, प्यारे भाई, यही वह चीज है जिसकी लोगों ने कभी कामना नहीं की, नहीं तो यह कभी की मिल गयी होती। और जब किसी को इसका कुछ पता ही नहीं था तो इसकी कामना कौन करता? आभार मेरे गुरुदेव का है जो इसे लोगों की जानकारी में लाये। अब आप 'पूर्ण अज्ञानता' शब्द लीजिये—इस अर्थ में कि 'जो हाँ और ना के बीच होता है।' यह कबीर के मतानुसार है। अच्छा अब मैं असली बात पर आता हूँ: सच्चा परमानन्द वह है जिसमें कोई आनन्द मिलता ही नहीं। जब तक आनन्द की अनुभूति होती रहती है तब तक उसमें माया (पार्थिवता) मिली रहती है। अब, जब आप अपने परमानन्द की दशा को भारी कहकर बताते हैं तो यह सिद्ध होता है कि अज्ञान के केन्द्र से आपकी कड़ी जुड़ी हुई है, और यह परिसीमन के कारण है। यदि आप इसे भारीपन के बजाय ऊब कह कर बतायें तो अधिक मुनासिब होगा। ऊब का अर्थ है कि चूँकि अब आप और अधिक ऊँचाई पर जा रहे हैं, इसलिए आपको सुखद और हलकी हवा की जरूरत है। शान्ति कभी उबाने वाली नहीं होगी। मैंने कारण ऊपर बता दिया है। सिर्फ ऐसे ही आदमी को इसकी चाह होगी जिसकी अभी एक ही आंख की क्षति हुई हो, दोनों की नहीं।

यदि सौभाग्यपूर्ण संयोग से झोपड़ी में रहने वाले व्यक्ति को एक अच्छा और आरामदेह मकान मिल जाता है, तो उसे वह बहुत अच्छा लगता है। पर जब बहुत दिन उसमें रहते रहते वह उसका आदी हो जाता है, तो वह उससे भी बेहतर मकान की सोचने लगेगा। यह उदाहरण यह समझाने के लिए है कि आपको भारीपन और ऊब का क्यों अनुभव हो रहा है। आपने लिखा है, "मैं महसूस करता हूँ कि मेरे मन की रुझान इस हालत से बाहर निकलने की है। इसलिए या तो मेरा मन अभी तैयार नहीं हुआ है या ये शान्ति और परमानन्द की सच्ची दशायें नहीं हैं।" मन की स्वाभाविक वृत्ति या शक्ति अच्छी चीज का—चाहे वह पार्थिव हो चाहे आध्यात्मिक—अनुभव करने की होती है। अतएव जो कुछ इसकी निगाह में आता है उससे वह जुड़ जाता है—चाहे वह शान्ति हो चाहे परमानन्द।

❀ ❀ ❀ ❀

मैंने आपको विधि बता दी है। पर जब इलाज करने के लिए बहुत से हकीम मौजूद हों तो हमें बहुत बिरले और खास मामलों को छोड़ कर, इससे कोई मतलब नहीं रखना चाहिए। जो काम आपके हाथों में है वह किसी तरह थोड़ा नहीं है और इसके और भी बढ़ने की उम्मीद है। मैं सचमुच बहुत खुश हुआ कि आप मसीहा होना चाहते हैं। पर वैसा होने के पहिले आपको अपने अन्दर दर्द पैदा करना पड़ेगा।

❀ ❀ ❀ ❀

श्रद्धा का मतलब है कि व्यक्ति अपने विचार को गुरु के साहस के साथ दृढ़ता से जोड़ ले।

❀ ❀ ❀ ❀

मैं केवल असली हीरा देता हूँ जिसकी परख सिर्फ जौहरी कर सकता है। अगर काँच का व्यापारी हीरे की कीमत न जान सके तो इसमें हीरे का कोई दोष नहीं है। फ़ारसी में एक शेर है जिसमें कहा गया है : अगर उल्लू दिन में सूरज को नहीं देख पाता है तो इसमें सूरज का कोई कसूर नहीं है। अगर एक ही चीज से बहुतों का भला होता है, सिर्फ एक को फायदा नहीं पहुँचता तो ऐसा उसी के दोष से होता है। अगर कोई आपके पास शिष्य और जिज्ञासु के भाव से आता है तो वह कभी लाभान्वित हुए बगैर रह ही नहीं सकता।

❀ ❀ ❀ ❀

मैं आपकी संवेदनशीलता में कोई खामी नहीं पाता। पर गलती आत्म-विश्वास की कमी की है। जो चीज ठीक होती है उसके बारे में दिल में एक इत्मीनान का एहसास होगा।

....

अगर सच्चा प्रेम हो तो शरीर का एक एक कण सात साल के अन्दर रूपान्तरित हो जाना चाहिए।

❀ ❀ ❀ ❀

जितना हो सके किफ़ायतशार बनिये। किफ़ायत से मेरा मतलब ऐसी कंजूसी से नहीं है जिससे बच्चों को दिक्कत हो।

❀ ❀ ❀ ❀

सेवा का आपका विचार मात्र लोगों को आपके आध्यात्मिक प्रशिक्षण के दायरे में ले आयेगा। आध्यात्मिक पुरुष का विचार अपनी प्रकृति के अनुरूप वातावरण को रचना करता है पर हम सब मनुष्य हैं और हमें मानवीय समझदारी की माँग के अनुरूप तरीके ही अपनाने चाहिये और यही हमारा कर्तव्य भी है। जब एक बार लहर उठ खड़ी होती है तो वह गिरती नहीं और हमें लहर उठाने की कोशिश करनी चाहिये। मैं चाहता हूँ कि कोई विज्ञापन न किया जाय यद्यपि हर क्रिया-कलाप खुद अपना विज्ञापन हो जाता है, यदि वह सेवा के विचार में बदला नहीं जाता। इसलिए वह बदलाव लाइये। और हम वही कर रहे हैं।

❀ ❀ ❀ ❀

श्री क ने अपने पत्र में अपने अन्दर क्रोध की शिकायत की है। उसका उत्तर यह है कि उन्हें उसे दूर करने के लिए इस तरह ईश्वर से प्रार्थना करनी चाहिए कि आँसू फूट कर बह निकलें।

❀ ❀ ❀ ❀

अभ्यासी जितना अधिक उपर पहुँचता जाता है, खास कर बिन्दु 'ए' के बाद, उतना ही उसे प्रशिक्षण देना मेरे लिए आसान होता जाता है। और आन्तरिक वृत्तियाँ परिष्कृत

होती जाती हैं। फिर भी आन्तरिक वृत्तियों को प्रकृति की समरूपता में लाने के लिए परिश्रम तो करना ही पड़ता है और इसी को सचमुच "बनाना" कहा जाता है और यह बड़ा कठिन काम है।

❀ ❀ ❀ ❀

कोई संत कितना ही ऊपर क्यों न पहुँच जाये, मानवता, जो स्वयं एक प्रतिबन्ध है, उसमें फिर भी बनी ही रहती है। कबीर कहते हैं :

"जेहि मरनी सें जग डरे सो मेरो आनन्द,
कब मरिहौं कब भेटिहौं पूरन परमानन्द।"

एक फारसी के शायर ने कहा है, "कभी मैं नौवें बहिश्त में तख्त पर बैठता हूँ और कभी मैं अपने तलुवे के भी नीचे पहुँच जाता हूँ।" यदि यह प्रतिबंध या बंधन छिन्न भिन्न कर दिया जाय तो आत्मा नश्वर मानव शरीर को छोड़ कर उड़ जाती है। इसलिए गुरु उससे छेड़छाड़ नहीं करते। हमारे लालाजी ने जिन अनेक नई बातों की खोज की उनमें से एक है सोलह वृत्त जो "सत्य का उदय" में एक रेखा चित्र में दिखाये गये हैं। जिनके परे, मेरे गुरू महाराज को या जिस पर उन्होंने कृपा की, उसको छोड़कर, और कोई अब तक नहीं जा पाया। जब कोई सत्रहवें वृत्त में अपने प्रवेश का सुखद समाचार लाता है तब वहाँ एक बन्धन निर्मित करना गुरु का कर्तव्य हो जाता है ताकि आत्मा उड़

कर अपने उद्गम-स्थान में न पहुँच जाय । मेरी कामना है कि लोग मेरे जीवन-काल में ही सत्रहवें वृत्त में अपने पहुँचने का सुसमाचार मेरे पास लायें । पर यह सब ईश्वर के हाथ में है । कोई पूजा, कोई अभ्यास इसके आगे जाने में सहायता नहीं कर सकता । केवल ऐसे गुरु का संकल्प, जिसकी स्वयं यहाँ तक पहुँच हुई हो, इस यात्रा में आगे बढ़ने में सहायता दे सकता है ।

❀ ❀ ❀ ❀

प्यारे भाई, आप मुझसे मजदूरी माँग रहे हैं ! मैं तो खुद आपको ही मालिक समझता हूँ । इसलिए यह विस्मय की बात है कि मालिक अपने किये हुए काम की मजदूरी अपने नौकर से माँगे । क्या मैं कुछ और भी लिखूँ ? लेकिन मैं डरता हूँ कि लोग समझेंगे कि मैं मालिकपना दिखा रहा हूँ । पर प्यारे भाई, मैं किस पर मालिकपना दिखाऊँगा जब मेरे पास न कोई शिष्य है न मेरा ईश्वर ही । ईश्वर के अनुग्रह से मैं प्रायः हमेशा निषेध की अवस्था में रहता हूँ जिसमें न खुद मैं रहता हूँ न मेरा ईश्वर । मुझे भय है कि लोग मुझे नास्तिक कहने लगेंगे । मैंने पहिले ही नास्तिकता को तोड़ ताड़ डाला है और यह मेरे गुरुदेव के आशीर्वाद के कारण हुआ ।

एक शायर ने कहा है, "कोई भी इबादत (पूजा) कुफ (सच्ची निष्ठा की कमी) से बईद (रहित) नहीं है, चाहे कोई

बुत (प्रतिमा) की पूजा करे चाहे अल्लाह का नाम ले।" और प्यारे भाई, नमकीन स्वाद से रहित नमक के ढोके में, यानी निषेध की इस दशा में, कितना सार है कि आप इससे कभी अलग होना ही नही चाहते। यहाँ तक कि यद्यपि प्रशिक्षण-विधि के अनुसार प्राणाहुति देते समय इस अवस्था से नीचे आना पड़ता है, मैं ऐसा नहीं कर पाता। यही कारण है कि अभ्यासी के अन्दर मिशन के सिद्धान्तों के प्रति निष्ठा उत्पन्न करने के लिए शान्ति और स्थिरता को छोड़कर और कोई अन्य भाव उत्पन्न नहीं किया जाता। पर ऐसा हुआ है कि यदि मैं अपनी पूर्व अवस्था में एक क्षण के लिए भी चला जाता हूँ तो मैं उस अवस्था की केवल छाया का अनुभव करता हूँ। मुझे याद है कि एक बार मैने किसी को लिखा था, "प्यारे भाई, आपने मुझे आध्यात्मिक प्रशिक्षण दिया है। और केवल आप ही के कारण आध्यात्मिकता में मेरी प्रगति हुई है।" और यह भावना बिलकुल सही थी। जब मैं ऐसी दशा में आता हूँ तब मुझे आप गुरु जैसे प्रतीत होते हैं। नहीं, आप स्वयं गुरु ही हो जाते हैं। और स्वभावतः यह स्वीकृति मेरे अन्दर उपजती है कि केवल आप ही लोगों ने मुझे प्रशिक्षण दिया है। मैं चाहता हूँ कि मेरे साथी अपनी गलतियाँ और मूर्खतायें—या आप उनका जो भी नाम रखें—मुझे बतायें। पर जब मैं दूसरों से यह अपेक्षा करता हूँ तब सबसे पहिले मुझे उनके सामने अपनी मूर्खतायें रखनी चाहिए। एक बार ऐसा हुआ कि पंडित 'क' जिन्हें

अपने ज्ञान और विद्वत्ता पर बड़ा गर्व था, मुझे ज्ञान के क्षेत्र में (अपने द्वारा) पराजित समझने लगे। मैंने सोचा कि गर्व का पोषण करना उनके लिए शुभ नहीं है। इसलिए मैंने एक कलाबाजी खाई और अपनी पहिले की एक हालत में आ गया। और तब मैंने उनको लिखा। आप हसेंगे यह जान कर कि मैंने उन्हें क्या लिखा। मैंने लिखा था, "यह केवल मैं ही था जिसने राम और कृष्ण को इस संसार में भेजा था। यह केवल मैं ही था जिसने श्रुतियों को ऋषियों के अन्तस् में प्रकाशित किया था।" अब आप समझ गये होंगे कि क्यों आप अक्सर अपने को अँधेरे में पाते हैं।

❀ ❀ ❀ ❀

एक ऐसे आदमी को, जो निषेध की अवस्था में है, दूसरों का दुःख देखने पर दुखी और सुख देखने पर सुखी स्वतः ही हो जाना चाहिए। पर यह केवल सतह पर ही होना चाहिए और (कुछ ही देर के) बाद में उसे "जैसा वह है" वाली अवस्था में लौट जाना चाहिए।

❀ ❀ ❀ ❀

हम हृदय पर क्यों ध्यान करते हैं जब सिर्फ दिमाग हर चीज के बारे में सोचता है? हृदय मन का गतिविधि का क्षेत्र है, और दिमाग और सारे शरीर में जितने बिन्दु हैं लगभग वे सब हृदय में पाये जाते हैं। उस पर ध्यान करने से उन सबके निर्मलीकरण में सुविधा होती है।

❀ ❀ ❀ ❀

आपने लिखा है कि सांसारिक चिन्तायें हृदय में भारोपन उत्पन्न करती हैं। यह सिद्ध करता है कि हृदय इतना निर्मल हो गया है कि फूल की मीठी खुशबू भी उससे नहीं सही जाती। फिर भी चिन्तायें उड़ती हुई शक्ल में होनी चाहियें ताकि हृदय को उनका भान न रहे।

❀ ❀ ❀ ❀

श्री क ने मेरे पास तिरुपति में रूपान्तरण करने के लिए तार भेजा जो मुझे इलाहाबाद में मिला। मुझे खेद है कि तार द्वारा मैं उनका रूपान्तरण नहीं कर सका। पर यह निश्चयतः अध्यात्म-पथ में ईश्वर को पाने की उनकी विकलता की सूचना देता है, जो अच्छा है। दो दिन पूर्व मैंने उसका उत्तर दे दिया है और उसमें कुछ तर्क की बातें लिख कर मैंने सूर्य को दीपक दिखाया है। पर भाई, वे बहुत अच्छे आदमी हैं और वे प्यार भी करने लगे हैं। पर प्यारे भाई, मैं करूँ क्या? इस तुच्छ जीव की हड्डियों में जरा भी मज्जा नहीं बची है। सम्भवतः इसी कारण लोगों को मैं अच्छा न लगता होऊँ। अब क्या मैं शीशे में अपना चेहरा देखना शुरू करूँ ताकि अपने खुद को देख कर मैं खुश हो लूं? पर मुझे भय है कि यदि मैं ऐसा करूँ तो मुझे अपना बिम्ब उसमें अनुपस्थित मिले, यद्यपि मुझे विश्वास है कि अनस्तित्व में भी कुछ विद्यमान मिल सकता

है। हाँ, यह सचमुच निश्चित है क्योंकि असलियत केवल निषेध में मिलती है।

❀ ❀ ❀ ❀

हमारे महात्माओं और सन्यासियों ने भारत की आर्थिक दशा का ध्यान रखे बिना घी के न जाने कितने टीन अग्नि में हवन कर दिये हैं। वे लगातार दो या तीन महीने तक चौबीसों घण्टे अग्नि में हवन करते रहते हैं। जो भी महात्मा नामवरी चाहता है भारत के धन को आग में हवन करने से शुरू करता है। हर साल हमें ऐसी खबरें मिलती हैं। मुझे दक्षिण भारत की दशा की जानकारी नहीं है। सम्भवतः वहाँ भी यही होता होगा। और जो ऐसा नहीं करते वे जनता को कुण्डलिनी की मृग-मरीचिका में फँसाते हैं। इस सबके बावजूद हमारे महात्माओं से कोई भी एक भी आदमी के हृदय में ज्योति नहीं जगा पाया। हाँ उन्होंने वह चीज जरूर भरपूर फूँकी है जो उनके बच्चों के लिए उपयोगी हुई होती और जो दिल और दिमाग के सही निर्माण में सहायक हुई होती। यदि प्राण मात्र की आहुति दे कर श्री रामचन्द्र मिशन एक भी व्यक्ति के अन्दर ज्योति जगा सका है तो यह हजार यज्ञों से अधिक उत्तम कार्य है। यदि आप इस पर गम्भीरतापूर्वक विचार करेंगे तो देखेंगे कि आपने अनेक हृदयों में यह ज्योति जगाई होगी और बहुत से और लोग होंगे जिनमें आप इसे जगा सकते हैं। और आप भी ऐसे ही व्यक्ति थे कि किसी मौके पर लिखे गये मेरे एक

साधारण वाक्य ने आपको इतना प्रभावित किया कि आपके अन्दर की बुझी हुई लौ एक बार फिर जल उठी और वह इतनी चमकदार और तेज हो उठी कि उससे लपक बाहर जाने लगी। आपका प्रारम्भ सही हुआ है। खेत को तैयार तो करना ही पड़ता है, वह तैयार किया जा रहा है। यदि बुझे हुये हृदय ऐसे हृदय के सामने आ जायें, तो भले ही उनकी गरमी तक निकल गई हो, वे फिर भी निश्चयतः पुनः प्रदीप्त हो जायेंगे। आपके कार्य-क्षेत्र का विस्तार आवश्यक है।

❀ ❀ ❀ ❀

प्रकृति जरूर आपसे काम लेगी और काम के लिए आपको जल्द तैयार होना है। आपको काम करना ही पड़ेगा। सीमाओं को थोड़ा ढीला करना पड़ेगा।

❀ ❀ ❀ ❀

जो कोई यहाँ आता है केवल शंका करता जाता है और अपनी योग्यता को इसकी गरमी और ठंडक जाँचने की कसौटी मान कर इसका मूल्यांकन करता रहता है। चूँकि यहाँ न गरमी है न ठंडक, अतः वे अपनी कल्पना से काम लेने लगते हैं और किसी न किसी निष्कर्ष पर पहुँच जाते हैं। चूँकि वे शंकाओं को लिये हुये आते हैं, वही चीज उन्हें अविश्वसनीय निष्कर्षों पर पहुँचाती है। ऐसे कम मिलते हैं जो सच कह सकते हैं, और ऐसे बहुत हैं जो झूठ को सच कह कर बताते हैं।

❀ ❀ ❀ ❀

हर कोई बुद्धिमान आदमियों की बड़ाई करता है। मैं भी वही करता हूँ। कहीं मैंने मजाक में कहा भी है कि ईश्वर भी दुर्बल की सहायता नहीं करता। और दुर्बल वही होता है जिसमें आत्म-विश्वास न हो। अब मैं कहता हूँ कि जो मूर्ख हैं उनके लिए ईश्वर ने एक स्थान सुरक्षित रखा है—वह स्वर्ग है। पापियों और अज्ञानियों के लिए नरक ही स्वर्ग है; बुद्धिमानों के लिए दिव्य स्वर्ग है और निष्कपट निष्पाप लोगों के लिए ब्रह्म-लोक है। मै समझता हूँ कि यह विभाजन ठीक है। यदि मैं इसकी व्याख्या करूँ तो कई पन्नों की जरूरत पड़ेगी। इसलिए व्याख्या करने का काम आप लोगों के लिए छोड़ता हूँ।

❀ ❀ ❀ ❀

मेरा पहेली बुझाने का मन हो रहा है। ईश्वर किससे अधिक प्रेम करता है—उससे जिसने उसे केवल एक बार देखा और फिर उससे दूर रहता है। इस पर एक या दो पंक्ति लिखना चाहता हूँ। हम ईश्वर से कब विलग हुए? जब हमने उद्गम को छोड़ कर यह स्वरूप—मानव शरीर—ग्रहण किया। जब हम इतने बड़े उद्गम से चले और सूक्ष्म तल पर उतरे, जो उससे बहुत नीचे है, तब हमने मूलतत्त्वों के पिंजरे में आश्रय लिया। हमें उसकी याद भी बनाये रखना चाहिए ताकि हम भक्ति के क्षेत्र के अन्दर ही रह सकें और अपनी वर्तमान दशा को, जो मौलिक है, समझ सकें। जिस स्थान पर अभी हम हैं

वह ईश्वरीय गुणों के हिसाब से ईश्वर से कोसों दूर है। इसका अर्थ है आत्मानुभव के बाद भी ईश्वर और मनुष्य (के भेद) का विचार याद रखना चाहिए। संक्षेप में, आत्मानुभव के बाद मानवीय शिष्टाचार को तिलांजलि न दे डालिए।

❀ ❀ ❀ ❀

सच्ची आध्यात्मिकता वास्तव में रंग, गंध और स्वाद से रहित होने में है क्योंकि ईश्वर में इनमें से कुछ भी नहीं है। हमारी पद्धति में अभ्यासी को असलियत तक पहुँचाने का प्रयास किया जाता है। अगर कोई भी रंग बचा रह जाता है तो वहाँ विशुद्धता हो नहीं सकती। आप इन सब बातों को जानते हैं।

❀ ❀ ❀ ❀

फ़ारसी में एक कहावत है: "लैला को मजनूं की आँखों से देखो।" यानी, चूँकि लैला बदशकल लड़की थी, उसे देखने के लिए मजनूं की आँखों की दरकार थी। उसी तरह, यदि हम ईश्वर को देखना चाहते हैं तो वैसी ही उन्माद भरी निगाहों की ज़रूरत है।

❀ ❀ ❀ ❀

श्रद्धा ही वह अस्तित्व या आधार है जहाँ से परानुभूति का प्रारम्भ होता है। श्रद्धा वह अटूट कड़ी है जो एक बार जुड़ने पर तोड़ी नहीं जा सकती। जिस अभ्यासी में श्रद्धा नहीं होती वह आगे नहीं बढ़ सकता।

❀ ❀ ❀ ❀

नंगी तलवार की बहुत तारीफ की गयी है यद्यपि उसका काम काटना है। पर उसे काम में लेने के लिए दिमाग की जरूरत पड़ती है। ताकि वह दुश्मन पर वार करे, दोस्त या खुद पर नहीं।

❀ ❀ ❀ ❀

जब शिष्य अपने को गुरु में पूर्णतः निमज्जित कर देता है तो गुरु उसे आगे ले जाने के लिए व्याकुल हो जाता है, विशेषतः तब जब शिष्य स्वतः अपने बल पर आगे नहीं बढ़ पाता। मैं एक सवाल का, जो संभवतः हर एक के दिल में उठता है, जवाब दूंगा : "यदि गुरु बक्[1] प्रदेश का ही यात्री होता है तो, जरूरत पड़ने पर, उच्चतर क्षेत्र में पहुँच पाना शिष्य के लिए कैसे संभव है?" यदि गुरु मुक्त पुरुष हैं तो शिष्य को उनकी सहायता मिलेगी ही बशर्ते कि शिष्य ने ऐसी दशा प्राप्त कर ली हो जिसके कारण उसकी आवाज गुरु तक पहुँच जाये। गुरु ने जिनको दीक्षा दी है उनकी आवाज उनके पास जल्दी पहुँचती ही है। इसके अतिरिक्त प्रतिनिधि और शिक्षक भी रहते हैं जो शिष्य की जरूरत पूरी करते हैं।

❀ ❀ ❀ ❀

यदि कोई आदमी अपनी गलतियों के लिए पछतावे के साथ आता है और यदि उसकी रुझान अध्यात्म की ओर है, तो

---

१. विलयन उपलब्ध होने के बाद उस स्थिति का भी निषेध कर देने की स्थिति।

उसे प्रवेश दे देना चाहिए पर उसे गलतियाँ फिर न करनी चाहिए। अगर वह अपना ध्यान, अपने पापों के लिए पश्चाताप के साथ, ईश्वर की ओर मोड़ता है तो वह जल्दी ही शुद्ध हो जायेगा। इसमें रोने आदि के साथ पापों के लिए क्षमा प्रार्थना शामिल है। कुरान शरीफ़ (हदीस) में लिखा है, "अगर कोई बंदा माफी के लिए प्रार्थना करता है और रोने लगता है तो मैं शर्मिन्दा हो जाता हूँ और फिर मैं उसे स्वीकार कर लेता हूँ।"

❀ ❀ ❀ ❀

हमें ईश्वर के ऐक्य में कोई आस्था नहीं है। हम कुछ तो वातावरण से प्रभावित होते हैं, कुछ संगति से बिगड़ते हैं। पाश्चात्य संस्कृति ने भी किसी हद तक हमें प्रभावित किया है। तब जब हमारा अधःपतन पहिले ही शुरू हो गया तो गलत आध्यात्मिक प्रशिक्षण ने उसे पूरा कर दिया। परिणाम यह हुआ कि हम अध्यात्म से हजारों कोस दूर हो गये।

❀ ❀ ❀ ❀

एक ही गलती के लिए आदमी को चार सजा मिलती है—यह कैसे? मनुष्य जटिल जीव है। जब कभी वह अच्छा या बुरा काम करता है, मन सोचता है, हृदय निर्णय करता है और मानव-अंग अपना व्यापार प्रारम्भ करते हैं। इन दोनों में मन और हृदय से मदद की जाती है। जो इन्द्रियाँ क्रियाशील हुईं वे भी दोष भागी हुईं। और चूंकि ये सब शरीर के भाग हैं इसलिए शरीर भी उत्तर-

दायी है। जब कभी हम बुरी बातें सोचते हैं, हम वातावरण में बुरे विचारों का प्रभाव छोड़ते हैं। प्रकृति उसके लिए उसको दंड देगी। अपनी की गयी गलती के हिसाब से बुरा जीवन या नरक मिलता है। उसे नरक में जितना मुनासिब होगा उतना दंड मिलेगा, बाकी इस संसार में जन्म लेकर भोगना होगा। मन ने, जिसे वह काम खराब लगा था, दंड भोगा। उसका प्रभाव बुरा पड़ा और यह हृदय को दंड हुआ। समाज ने भी उसे दुत्कार दिया। उसे नरक मिला क्योंकि उसने वातावरण बिगाड़ दिया था। तीसरा दंड वह था जो शरीर और उसके अंगों को मिला। इस प्रकार जो जो गलती करने में सहायक हुए दण्डित हुये।

"जब मैने महबूबा को देखा तो मेरा मन मचल उठा। कसूर था आँखों का, छुरी दिल पर चली।"

❀ ❀ ❀ ❀

मेरे गुरुदेव कहा करते थे कि आध्यात्मिक पुरुष को मांस नहीं खाना चाहिए। मैं उसी नीति का अनुसरण करता हूँ। ऐसे संत जरूर हुए हैं जो मांस खाया करते थे। पर मांस खाने से दूर रहना चाहिए।

❀ ❀ ❀ ❀

यदि प्रशिक्षक में अनुशासन की कमी है तो वह काम के योग्य नहीं है। यदि गंभीरतापूर्वक देखा जाय तो प्रशिक्षक का अपमान मेरे गुरुदेव का अपमान है।

जहाँ तक मेरा सवाल है, मैं सदा अपने गुरुदेव के आश्रय में रहा हूँ और मेरे गुरुदेव जिसकी अधीनता में रहने के लिए मुझे आदेश देंगे, मैं उसकी अधीनता स्वीकार कर लूंगा। केवल इस निर्भरता के बल पर मैं ऐसी संकल्प-शक्ति अपने अन्दर विकसित कर सका हूँ—जो केवल मेरे गुरुदेव का प्रसाद है—कि मैं एक क्षण में हजारों व्यक्तियों को आध्यात्मिक प्रशिक्षण के लिए तैयार कर सकता हूँ।

❀ ❀ ❀ ❀

भाई, मैं चमत्कार कहाँ से लाऊँ? मेरा ध्यान कभी उस दिशा में नहीं रहा। जब कभी आप लोग किसी चीज की कामना करेंगे, कोई चमत्कार घटित हो जायेगा। यद्यपि मेरे गुरुदेव ने कहा है कि मुझमें चमत्कार दिखाने की शक्ति है—जिसका मैं पूरी तरह विश्वास करता हूँ—फिर भी उधर मेरी रुझान बिलकुल नहीं होती। दूसरे, केवल सिद्धान्त ही सदा लोगों को आकर्षित कर सकते हैं। ईसा मसीह जीवन भर चमत्कार दिखाते रहे पर उन्हें मुश्किल से दर्जन भर शिष्य मिल सके। उनमें से एक इतना दगाबाज निकला कि उसने चालबाजी से उनको क्रूस पर चढ़वा दिया। उनकी मृत्यु के बाद, उनकी शिक्षाओं ने सारे संसार को आकर्षित किया। एक और चीज जिसने उनकी मदद की थी, वह यह थी कि उन दिनों हिन्दू लोग समुद्र-यात्रा को शास्त्र-विरुद्ध समझते थे। एक बात मैं कहना चाहूंगा कि गुरुदेव के अनुग्रह से जो चमत्कार

मैंने किये हैं, उन्हें और किसी ने नहीं किया है। पर जो देख सकते हैं सिर्फ वे ही इसे जानते हैं। और भाई प्रकृति का काम करने में मैं ऐसा करने के लिए बाध्य रहूँगा।

❀ ❀ ❀ ❀

संकल्प और इच्छा समझाने के लिए मुझे विभाजन करने होंगे : (१) शरीर तल (२) मनस्तल (३) अध्यात्म तल। ये इच्छाओं के भेद हैं। इच्छायें अच्छी भी होती हैं, बुरी भी। बुरी इच्छाओं का संबन्ध आवेगों, काम भाव, इत्यादि से होता है। इसी श्रेणी में लालच इत्यादि भी शामिल किये जा सकते हैं। मनस्तल की इच्छाओं में आत्म-विवर्धन, आत्मोन्नति, आत्म-योग्यता इत्यादि का रहस्य छिपा रहता है। जब यह चीजें आध्यात्मिक तल तक पहुँच जाती हैं, तब कर्तव्य का ध्यान आता है और फंदे से छूटने की चिन्ता लगती है। वृत्ति ईश्वर-प्राप्ति की ओर मोड़ दी जाती है। यह वही वृत्ति है जिसका कभी शरीर-तल से सम्बन्ध था। पर चूंकि कर्तव्य-भाव इसमें शामिल है इसलिए इसको इच्छा कहना गलत होगा। संकल्प का सम्बन्ध मनस्तल से है क्योंकि आप मानसिक रूप से, ध्येय को बराबर स्मरण रखते हुए, क्रियाशील होने लगते हैं और यह अन्त तक जारी रहता है। हर क्षेत्र में इसे नया जीवन मिलता जाता है। जिस हद तक यह शुद्ध और सन्देह से रहित होता है, उतनी ही जल्दी उसका प्रभाव होता है। यानी इसकी क्षमता बढ़ती जाती है। अब, इसके कार्य महामाया

नाम के सांसारिक क्षेत्रों में से किसी में भी प्रभावी होते हैं। बाद में यह विशुद्ध मूल रूप में बदल दिया जाता है—वस्तुतः हीरा हो जाता है। इस तल पर पहुँचने पर आदमी के लिए, किसी को एक आध्यात्मिक तल से उठा कर दूसरे में पलक मारते पहुँचा देना बहुत आसान हो जाता है। और जब कोई आदमी ब्रह्मनिष्ठ यानी ब्रह्म में बहुत गहराई से लीन हो जाता है, तब उसका संकल्प अमोघ हो जाता है। पर भाई, संकल्प का यह अंश जो इतना अधिक विकसित होता है, केवल ईश्वरीय कामों में सहायक होता है। यदि कोई आदमी (आपने "अनन्त की ओर" में पढ़ा होगा) शंका की जड़ समाप्त कर देता है तब संकल्प अत्यधिक क्षमतासम्पन्न हो जाता है। पाश्चात्य दर्शन का आधार शंका है जब कि पौर्वात्य दर्शन में उसके लिए कोई स्थान नहीं है। शंका पालना घर में चोर को जगह देना है। भाई, अभ्यास से इन चीजों का स्वतः पता लग जायेगा। विधि ठीक होनी चाहिए और पथप्रदर्शक कुशल। अभ्यासी को ठोसपन हटाना चाहिए और सूक्ष्मतर दशाओं में निवास करते जाना चाहिए।

❀ ❀ ❀ ❀

लोगों को ईश्वर पर भरोसा नहीं है, और मुझे अपने स्वास्थ्य पर भरोसा नहीं है। स्वास्थ्य पर भरोसा न होना दुर्बलता का चिह्न है और ईश्वर पर भरोसा न होना आध्यात्मिक आत्महत्या का चिह्न है। लोग कहते हैं कि फसलें आज-

कल अच्छी नहीं होतीं जिसका अर्थ है कि ईश्वर बुद्धू हो गया है और उसे कुछ चीजों का ध्यान नहीं रहता। पर लोग नहीं समझते कि उसके द्वारा दी गयी शक्ति के द्वारा उसी के काम में उन्होंने कितनी गड़बड़ी पैदा कर दी है। क्रियायें अनुपाततः अब भी हो रही हैं। अब, हमारे काम प्रकृति के विपरीत थे और उन्होंने वातावरण में बिगाड़ पैदा किया जिसके कारण हमारा ही गला कटा। अब इन चीजों की सफाई की ज़रूरत है, जो किसी हद तक हो रही है और होती रहेगी। इसे आप ही सब लोगों को करना है और अनजान में हर एक संत कुछ न कुछ करता है। मुझमें साहस है और गुरुदेव की कृपा से किसी चीज की कमी नहीं है। इसे करने में मुझे दूसरा सेकंड नहीं लगेगा। मैंने यह सब इसलिए लिखा है कि आप सब भी अपने अन्दर हिम्मत को बढ़ावा दें। पर मैं स्वयं यह नहीं करता क्योंकि जिन्होंने अपनी शक्तियों के दुरुपयोग से यह सारी गड़बड़ी पैदा की है वे सब अपनी करनी का फल भोग पायें। प्रकृति भी यही बात चाहती है। विनाश का आना अनिवार्य है, वह शुरू भी हो गया है और उसके ये कारण हैं।

❀ ❀ ❀ ❀

मैं आपको एक बात बताता हूँ। पूर्ण आत्म-विश्वास के साथ किया गया कोई भी काम सही होगा बशर्ते कि करने वाले

को इस तथ्य का भान तक न हो कि 'आत्म' शब्द किसका द्योतक है। आपके शब्दों में 'आत्म' पूरी तरह गायब हो जाना चाहिए।

❀ ❀ ❀ ❀

यह देखा जा रहा है कि लोगों को सफाई के सायंकालीन अभ्यास से फायदा नहीं हो रहा है। कारण यह है कि लोग इसे गलत ढंग से करते हैं। अपने केन्द्र के अन्तर्गत सत्संग कराने वाले सभी व्यक्तियों को यह सूचित करिये और जिनसे भी आपकी मुलाकात होती है उन्हें जबानी समझा दीजिये। वास्तव में लोग पहले ठोसपन का ध्यान करने लगते हैं और तब सोचते हैं कि वह धुयें की शकल में पीछे की तरफ से जा रहा है। सही बात तो यह है कि उन्हें इसे वैचारिक सुझाव के माध्यम से उसे धुयें की शकल में, निकाल फेंकना चाहिए।

❀ ❀ ❀ ❀

इस सब का मतलब है कि पूजा के विषय में हमें अपने हृदय पर दबाव पैदा करना चाहिए।

❀ ❀ ❀ ❀

एक शायर ने कितने सुन्दर ढंग से व्यक्त किया है :

गुनहगारों को पूछा जो उसकी रहमत ने,
बहुत खफ़ीफ़ हुये जो गुनहगार न थे।

अपने को पापी समझना दीनता का चिह्न है। पर यह विचार इसलामी है। संभवतः हमारे धर्म में यह बात नहीं कही

गई है। यह तो वास्तव में शराफ़त की बात है। जब हम अपने को पापी समझते हैं तो हमारा हृदय 'उसकी' करुणा को आकर्षित करने लगता है और जब हम उसकी करुणा पर पूरी तरह निर्भर हो जाते हैं तब इस दशा में हम भरपूर लाभान्वित होते हैं। यह आत्म-समर्पण का एक अंग है। जब हम किसी विशाल वस्तु की ओर बढ़ते हैं तो हमें अपनी लघुता का अनुभव होने लगता है—इतना अधिक कि हम उसकी करुणा की ओर देखने लगेंगे और हमारा कोई अस्तित्व नहीं रह जायेगा। इसका अर्थ है कि उसकी करुणा के लिए हम एक रिक्तता का निर्माण करते हैं। यह असलियत के विषय में है जिसे केवल जिज्ञासु जान सकता है।

प्रेम सर्वत्र सराहा जाता है। महाभारत में एक कथा है : जब भगवान कृष्ण विदुर के घर गये, तो विदुर की पत्नी, जो नंगी नहा रही थी, कृष्ण का स्वर सुनकर मारे खुशी के दरवाजा खोल कर बाहर निकल आई। कृष्ण ने अपना उत्तरीय उस पर फेंक कर उसे ढका। वह उन्हें केले खिलाने लगी—पर इस तरह कि छिलके खिला रही थी और गूदा फेंक रही थी। जब विदुर आये और उन्होंने उसे बताया कि वह क्या कर रही थी तब वह होश में आई और उन्हें गूदा खिलाने लगी। तब कृष्ण बोले कि जो स्वाद छिलके में था वह गूदे में नहीं मिला। इसलिए जब प्रेम और भक्ति इस कदर हावी हो जाती है तो जो दशा

विदुर की पत्नी की थी उसका अनुभव कम उन्नत अभ्यासियों को भी कभी कभी हो जाता है।

❀ ❀ ❀ ❀

श्री क ने मुझको लिखा है कि मैं चिकमंगलूर जरूर जाऊँ। पर मेरा स्वास्थ्य ऐसी बेमतलब सफर का भार सहने योग्य नहीं है। वे समझते हैं कि मेरे वहाँ जाने से उनको पुण्य मिलेगा, पर पुण्य तो रूहअत से मिलेगा, जिसका मतलब आप जानते हैं। संक्षेप में, पुण्य मिलता है प्रार्थना और भक्ति द्वारा।

❀ ❀ ❀ ❀

मैं अपने खाली समय में सोच रहा था कि कितना अच्छा होता यदि किसी तरह ऐसा तरीका मालूम होता जिससे मनुष्य अपनी पाशवीय वृत्तियाँ छोड़ कर सच्चे अर्थ में मनुष्य बन जाय। जब मैंने अपने अन्दर और सृष्टि के अन्दर भी अच्छी तरह देखा, तब मैंने दो डाइनेमो देखे—एक व्यष्टिगत सृष्टि का डाइनेमो, दूसरा सम्पूर्ण सृष्टि का डाइनेमो। अभी मैंने दूसरे डाइनेमो को हाथ नहीं लगाया है क्योंकि मुझे पता है कि केवल विशिष्ट व्यक्ति के पास ही इसके उपयोग की शक्ति है। यह भय भी रहता है कि हर साधारण महात्मा इसकी बात सोच तक नहीं सकता। इस समय हमारे मिशन में दो या तीन ऐसे व्यक्ति हैं जो इसका उपयोग कर सकते हैं। पर इस मामले में मैं उन्हें कोई गुर नहीं बता सकता क्योंकि वहीं स्थित रहने के

लिए मुझे उन्हें विशेष शक्ति देनी है, जिससे यह जीवन जाकर उस (जीवन) में मिल न जाये।

अब मैं व्यक्तिगत सृष्टि के डाइनेमो की बात करता हूँ। यह (पहेली) मैं अपने गुरुदेव के अनुग्रह से सुलझा सका हूँ। उन्होंने एक हल बताया है जो बहुत अच्छा है और जो कुछ मैंने इस पर सोचा है वह भी सही है। मेरे गुरुदेव ने भी इसे मान लिया है। इस हल में कोई खतरा नहीं है। यह बहुत कारगर औजार है। प्रयोगकर्ता को बहुत सजग रहना पड़ता है। मैंने निरीक्षण के लिए दो मामले लिए हैं। पर यह देखना है कि क्या केवल एक प्रयोग पूरे जीवन-काल में काफी होगा या कुछ अन्तराल के बाद उसे कई बार करना आवश्यक होगा। जिनको मैंने प्राणाहुति दी है उनमें बदलाव के चिह्न तो दिख रहे हैं पर यह कैसा बदलाव होगा यह तो उसके सामने आने पर ही पता लगेगा। इस प्रक्रिया को 'नाभिकीय (न्यूक्लीयर) विधि' कह सकते हैं।

❀ ❀ ❀ ❀

यदि हर सत्संगी को मिशन अपना लगे तो जिन कठिनाइयों का मिशन अभी सामना कर रहा है वे खतम हो सकती हैं। जब हमें अपने बच्चे अपने खुद के लगते हैं तब हम उनके आराम के लिए कोई भी कष्ट झेलने के लिए तैयार रहते हैं।

❀ ❀ ❀ ❀

मुझे आपसे बहुत काम लेना है और आप पर बहुत काम करना भी है। इस तरह लेना और देना दोनों शामिल हैं।

अंग्रेजी में एक उक्ति है, "आदान-प्रदान में कोई चोरी नहीं है।" अपने खाली समय में आप ईश्वर का स्मरण करते होंगे। आप जैसे जैसे आगे बढ़ियेगा, आपको लगेगा कि कुछ परिवर्तन हो रहे हैं। अभी हाल में मैंने इसकी शुरुआत भर की है। मैं आशा करता हूँ कि भविष्य में यह आपकी जानकारी में आयेगा। इसके लिए आपको अन्तरिक्ष में काम करने के लिए तैयार करना पड़ेगा। ऐसा होता है कि अभ्यासी ध्यान में कभी लीन हो जाता है, कभी नहीं होता। कारण यह है कि संस्कार जो अपने क्षेत्र में मूलबद्ध पड़े रहते हैं वे बाहर निकलने के लिए हृदय की तरफ आते हैं। यह इसलिए होता है कि ध्यान हृदय में एक रिक्तता उत्पन्न करता है। जब तक सारे संस्कार नहीं निकाल बाहर किये जाते, मुक्ति नहीं हो सकती। सच तो यह है कि नित्यक्रम में भी मैं उनकी सफाई करता रहता हूँ। सहजमार्ग पत्रिका में कहीं मैंने इस विषय पर एक लेख लिखा है।

ध्यान काल में जो भी दशा पैदा होती है वह हर तरह अभ्यासी के लिए हितकारिणी होती है, चाहे उसे अच्छी लगे चाहे अच्छी न लगे।

अध्यात्म बहुत आसान बात है और इसकी प्राप्ति में अधिक समय नहीं लगता। अभ्यासी को केवल श्रद्धा और भक्ति बढ़ाना चाहिए। और भक्ति बार बार स्मरण करने से पैदा होती है।